जल के सार्वभौमिक व सांस्कृतिक महत्त्व:-

भारत के विकास की बात करें तो पर्यावरण जल, जंगल और जमीन का इतिहास काफी पुराना है और इसके उदय की बात करें तो जल को लेकर हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यताओं का उदय जल के कारण ही हुआ है और हमारी संस्कृति और सभ्यताओं के कारण ही हमारे देश या अन्य देशों की सभ्यता का विकास माना जाता है। यहीं कारण है कि हमारी जिनती भी संस्कृतियां हैं उनका जन्म नदियों के किनारे माना जाता है जिसमें मानव जाति का विकास हुआ है। इनके साथ ही साथ अन्य जीव जन्तुओं का विकास माना जाता है। देखा जाये तो हमारे वेद, पुराण, और ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है।[1] मनुस्मृति में जल के महत्त्व और व्यवस्था का वर्णन मिलता है- "इसमें कहा गया है कि भगवान मनु के द्वारा रचित मनुस्मृति में सृष्टि रचना से लेकर सामाजिक व्यवस्थाओं को स्थापित करने तक का वर्णन किया गया है।" इसके साथ ही साथ ऋग्वेद में जल को दिव्य तत्त्व मान कर उसकी उपासना की गई हैं। यह उन पंच महाभूतों में से एक है जिनसे हमारे शरीर की रचना हुई । इस संपूर्ण जगत में जल व्याप्त है। *अत: इसे 'आपस' कहा जाता है।* इस दिव्य तत्व में वरुण देव के रूप में जल की पूजा की जाती है। जल के दो रूप हैं- स्थूल तथा मूल। जल कभी नष्ट नहीं हो सकता है, अत: वह अमृत कहलाता है।[2]

सभी प्राणियों में प्राण का संचार करने के कारण ही जल प्राण के रूप में विद्यमान है। *जल को 'परम रस' भी कहा जाता है।* जल मनुष्यों, पेड़-पैधों तथा जीव-जंतुओं के लिए महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। कहते हैं कि जल से मनुष्य की उत्पत्ति हुई है। आर्य काल से अब तक का कोई भी मांगलिक अनुष्ठान जल तथा जल देवता की उपासना के बिना अधूरा माना जाता रहा है। भारतीय संस्कृति में सरिताओं को जीवनदायिनी माना जाता है। इतिहास साक्षी है कि अधिकतर सभ्यताओं का जन्म नदी किनारे ही हुआ तथा विकसित हुई। हमारे पूर्वज जल की महत्ता को भली-भांति जानते थे। वैदिक काल में ऋषि-मुनि पवित्र जल की उपलब्धता की प्रार्थना करते हुए कहते थे कि "हे ईश्वर, हमारे शरीर के लिए शुद्ध जल प्रवाहित होता रहे।"[3]

---

[1] राधाकांत भारती. (2014). भारत की नदियां. पृ.06.

[2]प्रो एम एस राठौड़. (2007). जल संस्कृति. पृ.31.

[3] राधा भोला यामिनी. (2005). प्रदुषण समस्या तथा निवारण. पृ.21.

नदियों को देवी मान कर वंदना करने का क्रम तो प्राचीन काल से चला आ रहा है। कहते हैं कि तालाब अथवा सरोवर में नहाने से पूर्व कंकड़ी मारकर उसे जगाया जाता था तथा क्षमा-याचना कर जल में उतरा जाता था। मनुस्मृति में लिखा है-

नाप्सुं मूत्रं पुरीषं वाष्ठोवंन समुत्सृजेत।

अमेध्यलिप्तम्न्यद्वा लोहितं व विषाणी वा।[1]

"अर्थात पानी में मल-मूत्र, थूक अथवा अन्य दूषित पदार्थ, रक्त या विष का विसर्जन न करें।" जल के किनारें ही भारत की सभी संस्कृतिओं और सभ्यताओं का विकास हुआ है।

विकसित सभ्यताओं और जल का अटूट संबंध रहा है। भारत और प्राचीन संस्कृति वाले अनेक देशों का प्रारंभिक विकास नदियों व घाटियों के क्षेत्र में हुआ है। *प्राचीन सभ्यताओं की जानकारी नदियों के किनारों के नाम से हुआ है, जैसे नील नदी की सभ्यता, सिन्धु घाटी की सभ्यता इत्यादि।* मानव समुदाय के जीवन-यापन के लिए जल की परम आवश्यकता होती है। यही कारण है कि दुनिया के प्राय: सभी प्रसिद्ध नगर नदी तटों पर या सागर के किनारे बसे और विकसित हुए हैं। उदाहरणार्थ टेम्स नदीं पर लंदन, सीन पर पेरिस, मस्कवा पर माँस्को और नील पर काहिरा। भारत में भी संसार का प्राचीनतम तीर्थनगर वाराणसी गंगा तट पर, राजधानी दिल्ली में यमुना नदियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।[2]

जल और जीवन:- जल जीवन की आधारभूत आवश्यकता है। इसका प्रमाण यह तथ्य है कि जल मानव जीवन की प्रथम आवश्यकता है, इसलिए वह प्रकृति द्वारा नि:शुल्क हमें प्रदान की गई है। इसके अनेक धरोहरों में जल सबसे अनमोल धरोहर है। विश्व के सृजन से लेकर विश्व के संचालन में जल की भूमिका मुख्य है। जल मानव संस्कृति के मूल में है। हमारे जीवन के हर हिस्से में जल की आवश्यकता होती है। जल के बिना ना तो इस संसार में जीवन संभव है और न प्राणियों के जीवन की कल्पना की जा सकती है। क्योंकि जल ही जीवन है और जल से ही प्राणियों में जीवन है।[3]

गोथे के अनुसार *"संसार की प्रत्येक वस्तु का सृजन जल द्वारा ही होता है।"* यह पंक्ति सत्य प्रतीत होती है। क्योंकि हम देखते हैं कि सभी स्थलीय तथा जलीय परितंत्रों में जीवों की उत्पत्ति, उनकी संरचना

[1] रचना भोला यामिनी. (2005). प्रदुषण समस्या तथा निवारण. पृ.21.

[2] राधाकान्त भारती. (2014). भारत की नदियां. पृ.06.

[3] अनिल अग्रवाल एवं सुनीता नारायण. (2003). बूंदों की संस्कृति. पृ.16.

तथा उनके विकास के लिए जल अनिवार्य है। 500 ई. पू. के पिन्डारोज नामक ग्रीक कवि ने जल के विषय में कहा है कि "जल सभी वस्तुओं से सर्वोत्तम है।"[1]

प्रचीन काल से ही प्रकृति के पाँच तत्वों में वायु, जल, अग्नि, आकाश और पृथ्वी की पूजा होती रही है। क्योकिं इस भूमंडल पर इसके अभाव में जीवन संभव नहीं है। वायु के पश्चात जल सभी जीव जन्तुओं के लिए अति महत्वपूर्ण जीवन तत्व है। धरती पर विपुल मात्रा में गुणवत्ता से युक्त जल का उपलब्ध होना अनिवार्य है अन्यथा मानव जीवन अस्त-व्यस्त हो जाएगा। इसलिए वायु के बाद जल ही एक ऐसा पदार्थ है जिसके बिना जीवन संभव नहीं हैं। जीवों का जन्म जल से हुआ है जो जीव के बाहर पृथ्वी पर रहने लगे हैं, उनके जीवन के लिए भी जल एक विशेष महत्वपूर्ण तत्व है, जैसा कि हमारे प्राचीन ग्रथ में लिखा गया है।

देश के प्राकृतिक संसाधनों में जल, जंगल और जमीन का प्रमुख स्थान रहा हैं। समय के साथ-साथ इनमें भी बदलाव आता रहा है जिसका मुख्य कारण था कि लोगों ने अपनी आवश्यकताओं से अधिक पर्यावरण का दोहन करना शुरू कर दिया था। इसका श्रेय अंग्रेजों के आने से पूर्व दक्षिण भारत के विभिन्न समुदाय जल प्रणालियों का प्रबंधन कुदीमरमथ (स्वयं मरम्मत) नामक व्यवस्था के द्वारा सामूहिक रूप से करते थे। 18वीं सदी में ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन् आने से पूर्व वहां का हर किसान अपने अन्न उत्पादन के 1000 इकाई में से 300 इकाई सार्वजनिक कोष में देता था जिसमें से 250 इकाई अन्न सार्वजनिक निर्माण या मरम्मत कार्य के लिए गांव में ही रह जाता था।[2] सन् *1830 तक आते-आते किसानों की अदायगी बढ़ कर 650 इकाई हो गई, जिसकी 590 इकाइयां सीधे ईस्ट इंडिया कम्पनी को जाने लगीं। बढ़ती अदायगी,* मरम्मत और रख-रखाव वाले राजस्व में कमी के कारण किसान तबाह हो गये और उनकी सामुदायिक व्यवस्था समाप्त हो गई। *अंग्रजों के आने के पूर्व सैकड़ों वर्षो के दौरान निर्मित सभी 300,000 तालाब* मरम्मत के अभाव में नष्ट हो गये। परिणामस्वरूप जल के स्तर में गिरावट आने लगी। 1857 में आजादी की पहली लड़ाई के दौरान ईस्ट इंडिया कम्पनी को खदेड़ दिया गया था। 1958 में अंग्रजों ने मद्रास कम्पलसरी लेबर एक्ट 1858 बनाया जिसके तहत जल तथा सिंचाई व्यवस्थाओं के रख रखाव के लिए किसानों को श्रम करने का आदेश दिया। यह भी कुदीमरमथ कानून के नाम से चर्चित हुआ। चूंकि यह कानून

[1]प्रवीण कुमार बन्द्रवाल. (2008). पानी जीवन का आधार. पृ.09.

[2]अनिल अग्रवाल एवं सुनीता नारायण. (2003). बूंदों की संस्कृति. पृ.267.

स्व-प्रबंधन पर आधारित था न कि किसी दबाव पर, इसलिए यह सामुदायिक भागीदारी जुटाने और सार्वजनिक जल संसाधनों के पुनर्निर्माण में असफल रहा।[1]

स्व-प्रबंधन वाले समुदाय न केवल ऐतिहासिक वास्तविकता रहे हैं बल्कि वे आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक है और राजकीय हस्तक्षेप और निजीकरण भी इसे पूरी तरह समाप्त नहीं कर सके हैं। सात राज्यों में उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के विभिन्न जिलों में किये गये एक राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण में ए. एस. जोधा ने पाया कि पूरे भारत में गरीबों की ईंधन और चारे की सबसे बुनियादी जरूरतों की पूर्ति सार्वजनिक तथा सामुदायिक संसाधनों से होती है।[2]

जॉन लॉक ने संम्पत्ति सम्बंधी अपने प्रबंध ग्रन्थ "ट्रीटाइज आन प्रोपर्टी" के माध्यम से यूरोप में 17 वीं शताब्दी के एन्कलोजर आंदोलन के दौरान सामुदायिक सम्पदा की हुई चोरी को प्रभावी ढंग से वैधता प्रदान की थी । लॉक इस तर्क के साथ पूंजीवादी और अपनी विशाल सम्पत्ति की रक्षा में आगे आया कि सम्पत्ति तभी उत्पन्न होती है जब प्राकृतिक संसाधनों के मूल स्वरूप को श्रम के उपयोग के द्वारा रूपांतरित किया जाता है *"प्रकृति ने किसी वस्तु को जिस अवस्था में रख छोड़ा है उसमें अपना श्रम लगाकर जो उसकी अवस्था को रूपांतरित कर देता है वह अपनी सम्पत्ति बना लेता है।"* उसके अनुसार श्रम के माध्यम से भूमि, वनों तथा नदियों पर स्वामित्त्व स्थापित करने की स्वतंत्रता पर ही वैयक्तिक स्वतंत्रता निर्भर है। लॉक की सम्पत्ति सम्बंधी पुस्तकें आज भी सामुदायिक संसाधनों का क्षरण और धरती का विनाश करने वाली परिकल्पनों और रिवाजों की याद दिलाती है।[3]

भारत में पर्यावरणयी आंदोलन मूल रूप से लोगों में जल, जंगल और जमीन से जुड़े हैं। ये परम्परागत अधिकारों को पुन: स्थापित करने के संघर्ष से जुड़ें है। इन आंदोलनों की शुरुआत पर्यावरणीय विनाश को देखते हुए किया गया इसका श्रेय विष्णोई आंदोलन से इसकी झलक मिलती है जिसे मध्यकालीन राजस्थान से हमें पर्यावरण चेतना का एक सुंदर उदाहरण मिलता है। विष्णोई सम्प्रदाय के संस्थापक जम्बोजी (1451-1536 ई.) में अपने अनुयायियों के लिए 29 नियम दिये थे। इन्हीं 29 नियमों अर्थात बीस और नौ के कारण ही इए सम्प्रदाय का नाम विष्णोई पड़ा। इसमें से अधिकांश पर्यावरण के साथ सहचारिता बनाये रखने पर बल देते हैं। जैसे हरे-भरे वृक्षों को काटने तथा जल प्रबंधन और पशुवध की पाबंदी थी उस समय राजस्थान के जो कल्पवृक्ष थे वे खेजड़ी के पेड़ थे जो रेगिस्तानी परिस्थितियों में भी

[1] वंदना शिवा. (2007). पानी के लिए युध्द. पृ.32-33.
[2]वही.
[3] वही.

पनप जाते थे उनसे केवल पशुओं को चारा ही नहीं मिलता था बल्कि उनकी फलियों से मनुष्यों को खाना भी मिलता था। आगे चलकर जम्बोजी का प्रभाव लोगों के हृदय पर काफी गहराई तक पड़ा। जब वृक्ष-प्रेमी रिचर्ड बेकर भारत आए और इन्होनें यह कहानी सुनी तो वह गदगद हो गए। उन्होंने विश्व के सभी देशों में वृक्ष मानव संस्था के माध्यम से इस कहानी को प्रचारित किया और कहा कि 'यह भारत की महान संस्कृति और दुनिया के सामने आज तो संकट है, उसका उत्तर इसमें छिपा हुआ है। आगे चलकर इस आंदोलन ने भारत में लोगों को चिपको आंदोलन के लिए प्रेरित किया।'[1]

चिपको आंदोलन मूलतः उत्तराखंड के वनों के लिए वहाँ के लोगों के द्वारा 1970 के दशक में आरम्भ किया गया आंदोलन है। इसमें लोगों ने पेड़ों को गले लगा लिया ताकि उन्हें कोई काट न सके। यह आंदोलन प्रकृति और मानव के प्रेम का प्रतीक बना और इसे *"चिपको" की संज्ञा दी गई।* चिपको आंदोलन के पीछे एक परिस्थितिकी और आर्थिक पृष्ठभूमि की शुरुआत थी।[2] जिन क्षेत्रों में चिपको आंदोलन का बीज उपजा था वह अलकनंदा नदी का क्षेत्र था। इसी समय यह क्षेत्र 1970 में भंयकर बाढ़ का अनुभव कर चुका था। इस बाढ़ से 400 कि.मी. दूर तक का इलाका ध्वस्त हो गया था।[3] चिपको आंदोलन ने विकास के आधुनिक माडल के समक्ष एक विकल्प पेश किया जो आम जनता का ही परिणाम था। यह *आंदोलन भी गांधीवादी संघर्ष का ही एक रूप था। क्योंकि इसमें भी अन्यायपूर्ण, दमनकारी शासन् व्यवस्था का विरोध किया गया था जो पर्यावरण संरक्षण के नाम पर उसका शोषण कर रहा था। इस आंदोलन को वास्तविक नेतृत्व भी गांधीवादी कार्यकर्ताओं मुख्यतः चंडीप्रसाद भट्ट और सुंदरलाल बहुगुणा से मिला जिनके द्वारा प्रयोग की गई तकनीकी भी गांधी जी के सत्याग्रह से प्रेरित थी।*[4] इस आंदोलन के दौरान महिलाओं ने जल, जंगल और जमीन के लिए अपनी भागीदारी की मांग भी की। उनका तर्क था कि वह जो ईधन, चारे, पानी आदि को एकत्रित करती है उसके लिए जंगल का प्रश्न उसकी जीवन-मृत्यु का प्रश्न है। अत: वनों से संबंधित किसी भी निर्णय में उनकी राय को शामिल करना चाहिए। चिपको आंदोलन ने वन्दना शिवा को विकास के एक नये सिद्धान्त *'पर्यावरणीय नारीवाद'* के लिए प्रेरणा दी जिसमें पर्यावरण तथा नारी के बीच अटूट संबंधों को दर्शाया गया है।[5]

---

[1] http://elearning.sol.du.ac.in/dusol/mod/book/view.php?id=1448&chapterid=2157 as on 20 March 15
[2] शिवानन्द नौटियाल. (2004). पर्यावरण समस्या और समाधान. पृ.267.
[3] गोविन्द चातक. (2006). पर्यावरण और संस्कृति का संकट. पृ.59.
[4] लता जोशी. (2001). पर्यावरण की राजनीति. पृ.56.
[5]अनिल अग्रवाल एवं सुनीता नारायण. (2003). बूंदों की संस्कृति. पृ.267.

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि जंगलों की अंधाधुंध कटाई के खिलाफ आवाज उठाने में महिलाएं कितनी सक्रिय रही हैं। चिपको आंदोलन ने उन पहाड़ी महिलाओं को जो हमेशा घर की चार दीवारी में ही कैद रहती थीं वह बाहर निकलकर लोगों के बीच प्रतिरोध करने तथा अपने आपको अभिव्यक्त करने का मौका दिया। इसने यह भी दर्शाया कि किस प्रकार महिलाएं जल, जंगल और जमीन से सबंध रखती हैं और पर्यावरण के विनाश से कैसे उनकी तकलीफे बढ़ जाती हैं। अत: चिपको आंदोलन पर्यावरणीय ही नहीं हैं, बल्कि ये आंदोलन पहाड़ी महिलाओं के दुख-दर्द उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति का आंदोलन था जो जल, जंगल और जमीन के लिए लड़ा गया आंदोलन था जिसमें महिलाओं और पुरुष दोनों ने अपने हक के लिए लड़ा।[1] भारत में पर्यावरण आंदोलन मूल रूप से लोगों के जल, जंगल और जमीन से जुड़े परम्परागत अधिकारों को पुन: स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी की कोख में जिस नई भोगवादी सभ्यता का जन्म हुआ है, उसने जीवन और प्रकृति के प्रति मानव दृष्टिकोण में एक बुनियादी परिवर्तन कर दिया है। प्रकृति के साथ व्यवहार करने का हमारा जो रिश्ता था वह बिल्कुल बदल गया। मान प्राकृतिक संसाधनों का स्वामी बन गया है। निस्संदेह उसी समय वैज्ञानिक युग की शुरुआत में भौतिक समृद्धि हुई है, परन्तु जितना अधिक औद्योगिकरण हुआ है उससे कहीं अधिक जल और वायु प्रदूषण बढ़ता गया।[2]

उसी समय में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक मुद्दा उठा *पर्यावरण संरक्षण में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका सन् 1960 के दशक* में मानव जाति पर्यावरण प्रदूषण के प्रति सजग हो गयी। इसमें यह माना गया कि आर्थिक विकास की दौड़ में पर्यावरण को बहुत हानि पंहुची है। *यदि पर्यावरण प्रदूषण (जल, जंगल और जमीन) जैसा विनाश जारी* रहा तो मानव अस्तित्व को ही खतरा है। *1962 में रिशेल कारसन् की पुस्तक 'दी साइलेंट स्प्रिंग' ने भी* पर्यावरण प्रदूषण की ओर विश्व के सभी लोगों का ध्यान आकर्षित किया। अब पर्यावरण संकट पर अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता महसूस की गई। इसी संदर्भ में 3 दिसंबर 1968 को संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा ने एक संकल्प पारित किया जिसमें मानव पर्यावरण पर एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करने का प्रस्ताव रखा गया। *इस प्रकार 5 जून 1972 को स्टॉकहोम में विश्व पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किया गया और पहली बार वायु प्रदूषण और रासायनिक विषैलेपन जैसे मुद्दे विश्व स्तर पर चर्चा का विषय बने।*[3] इसमें आर्थिक विकास के साथ-साथ पर्यावरण की सुरक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय

[1] http://elearning.sol.du.ac.in/dusol/mod/book/view.php?id=1448&chapterid=2157 as on 22 October 15
[2] लता जोशी. (2001). पर्यावरण की राजनीति. पृ.58.
[3] वही.

स्तर पर संगठित प्रयासों की शुरुआत की गई। *इस सम्मेलन में 113 देशों ने भाग लिया। स्टाकहोम सम्मेलन के परिणामस्वरूप एक 'स्टॉकहोम घोषणापत्र' जारी किया गया जिसमें मानव और पर्यावरण की रक्षा के लिए 26 सिद्धांत और उनको क्रियान्वित करने के लिए 109 सुझाव शामिल किए गायें।*[1]

मानव पर्यावरण (जल, जंगल और जमीन) के घोषणापत्र दो भागों में बंटा हुआ है पहले भाग में 7 सामान्य टिप्पणियाँ हैं जैसे मनुष्य अपने पर्यावरण का निर्माता है, पर्यावरण व्यक्ति को सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक उन्नति के लिए अवसर प्रदान करता है। मानव के अस्तित्व के लिए पर्यावरण सुरक्षा आज सबसे बड़ा मुद्दा है। जनसंख्या वृद्धि पर्यावरण सुरक्षा के लिए एक समस्या है। वह समय आ गया है जब पर्यावरण रक्षा के लिए विश्व समुदाय को ईमानदारी से प्रयास करना होगा। घोषणा के दूसरे भाग में 26 सिद्धांतों का उल्लेख है जिसमें मुख्य निम्न है:[2]-

- मानव की यह जिम्मेदारी है कि वर्तमान के साथ-साथ आने वाली पीढ़ियों के लिए पर्यावरण को सुरक्षित रखें।
- पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए उचित योजना तथा प्रबंधन होना चाहिए।
- पृथ्वी की संसाधनों की पुर्ननिर्माण करने की शक्ति को अवश्य बनाए रखना चाहिए।
- पृथ्वी के न खत्म होने वाले संसाधनों का इस प्रकार प्रयोग होना चाहिए ताकि वे आने वाली पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित रह सकें।
- खतरनाक रसायनिक पदार्थो तथा तत्त्वों के उत्सर्जन पर रोक लगानी चाहिए जो पर्यावरण को हानि पहुंचाते हैं।
- सभी देशों को समुद्रीय प्रदूषण को रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिए।
- एक अच्छे पर्यावरण के लिए सामाजिक तथा आर्थिक विकास अनिवार्य शर्त हैं।
- पर्यावरण संरक्षण के लिए सभी देशों को एकीकृत तथा समन्वित विकास योजनाएं बनानी चाहिए।
- मानव रिहायश तथा शहरीकरण को पर्यावरण संरक्षण से जोड़ना चाहिए।

[1] http://elearning.sol.du.ac.in/dusol/mod/book/view.php?id=1448&chapterid=2157 as on 22 October 15
[2] डॉ सुजता बिष्ट. (2005). पर्यावरण प्रदुषण और इक्कीसवीं सदी. पृ.196.

- पृथ्वी तथा प्रौद्योगिकी को मानव विकास में योगदान के साथ-साथ पर्यावरण की समस्याओं के लिए समाधान भी ढूँढने चाहिए।[1]

ये सिद्धांत पर्यावरण संरक्षण और जल प्रदूषण नियन्त्रण से संबंधित हैं। इसमें देशों के मूलभूत अंतरराष्ट्रीय दायित्त्व की ओर संकेत किया गया है। इसमें औद्योगिक विकास ने हमारे पर्यावरण (जल, जंगल और जमीन) को काफी नुकसान पहुँचाया है। आज की स्थिति यह है कि हमारी नदियां, समुंद्र, भूजल, वायु सभी प्रदूषित हो चुके हैं। कागज के कारखाने से हाइड्रोजन तत्व निकलते हैं जिनसे हमारे प्राकृतिक संसाधन ही नहीं बल्कि समूचा वायुमंडल विषाक्त होता जा रहा है। कागज के कारखाने से हाइड्रोजन, सल्फाइड, ताप बिजलीघरों से सल्फर-डाइ-आक्साइड, तेल शोधक कारखानों से हाइड्रोज कार्बन तथा रासायनिक उर्वरक तथा कारखानों से अमोनिया उत्सर्जित होती है जो वायुमंडल को ही नहीं बल्कि नदियों को भी खतरनाक ढंग से प्रदूषित करती है।[2] कार्बन-डाइ-आक्साइड से वायुमंडल का ताप भी बढ़ता है। रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों तथा जीवाणु नाशकों के अत्यधिक इस्तेमाल तथा बहुफसली प्रणाली से भूमि के अधिक उपयोग की वजह से मिट्टी की परिस्थितिकी बदल गई हैं और उसमें इतनी विकृतियां आ गई हैं कि यह अपनी प्राकृतिक संरचना और उर्वरता को बनाए रखने के लिए आवश्यक तत्व खो चुकी है। भूमि प्रदूषण के दुष्परिणाम से मिट्टी में कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर, आयरन, तांबा, जिंक, नाइट्रोजन तथा फास्फोरस जैसे तत्वों की गंभीर कमी, कुछ उपयोगी पौधों और जीव समूहों के विनाश, विषाक्त अनाज, सब्जियों और फलों से मनुष्यों में स्वास्थ्य संकट आदि रूपों में सामने आता गया है। [3]

इसी संदर्भ में जल, जंगल और जमीन जैसी समस्याएं और विकराल रूप धारण कर लिया था और पर्यावरण एवं जल प्रदूषण के प्रति सरकार का ध्यान 1960 के दशक में आ गया था । वर्ष 1963 में गठित समिति ने जल प्रदूषण निवारण व नियन्त्रण के लिए एक केंद्रीय कानून बनाने की सिफारिश की। वर्ष 1969 में केंद्र सरकार द्वारा एक विधेयक तैयार किया गया जिसे संसद में पेश करने से पहले इसके उद्देश्यों व कारणों को सरकार द्वारा इस प्रकार से बताया गया[4] कि *"उद्योगों. की वृद्धि तथा शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के फलस्वरूप हाल में वर्षों में नदी तथा दरियाओं के प्रदूषण की समस्या काफी आवश्यक व महत्वपूर्ण बन गयी हैं। अत: यह आश्वस्त किया जाना आवश्यक हो गया है कि घरेलू तथा औद्योगिक बहिस्राव उस जल*

[1] http://elearning.sol.du.ac.in/dusol/mod/book/view.php?id=1448&chapterid=2157 as on 22 October 15
[2] शिवानन्द नौटियाल. (2004). पर्यावरण समस्या और समाधान. पृ.72-79.
[3] http://elearning.sol.du.ac.in/dusol/mod/book/view.php?id=1448&chapterid=2157 as on 22 October 15
[4] डॉ सुजाता बिष्ट. (2005). पर्यावरण प्रदुषण और इक्कीसवीं सदी. पृ.स. 201.

में नहीं मिलने दिये जाएं जो पीने के स्रोत, कृषि उपयोग तथा नदियों का जल प्रदूषण भी देश की अर्थव्यवस्था को निरंतर हानि पहुँचाने का कारण बना है।" इन सब को देखते हुए जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1974 तथा 1977 पारित हुआ है।[1] इसमें विषैले प्रदूषण फैलाने वाले कचरे को नदियों और प्रवाहों में फेकने पर रोक लगाने का अधिकार दिया गया है।

जल और पारिस्थितिकी तंत्र:-

जीवन की उत्पत्ति तथा विकास में जल, जंगल और जमीन का बहुत बड़ा योगदान है। पर्यावरण उन सभी स्थितियों और प्रभावों का योग है जो जीव-समूह के विकास एवं जीवन पर असर डालते हैं, उन्हें पर्यावरण के अंतर्गत शामिल करते हैं और साथ ही गतिशील रूप में मानव अन्य जीव-जतुओं, पौधे, सूक्ष्म जीव-समूह आदि भी इसके अंतर्गत समाहित है। पर्यावरण के सभी अवयव एक दूसरे से जुड़े हैं। इसलिए इसमें थोड़ा-सा परिवर्तन भी पूरे पर्यावरण *(जल, जंगल और जमीन)* पर प्रभाव डालता है। यही जल-चक्र एक परिस्थितिकीय प्रक्रिया है जिसके माध्यम से परिस्थितिकीय व्यवस्था वर्षा या बर्फ के रूप में जल प्राप्त करती है। आर्द्रता से नदियों, झरनों तथा भूमिगत जल स्रोतों का पुनर्भरण होता है। किसी विशेष परिस्थितिकीय व्यवस्था में जल उपलब्धता उस क्षेत्र के मौसम, भू-आकृति, पेड़ और भूगर्भीय स्थिति पर निर्भर करती है। इन प्रत्येक स्तरों पर आधुनिक मनुष्य ने पृथ्वी के साथ अत्याचार किया है तथा जल को अवशोषित और संचित करने की उसकी क्षमता को नष्ट कर दिया है।[2] जंगलों के काटने-उजाड़ने और खनन के कारण जल स्रवण क्षेत्रों में पानी के संरक्षण की क्षमता नष्ट हो गई हैं। मोनोकल्चर खेती और जंगलों की कटान के कारण परिस्थितिकीय व्यवस्था सूख गई है। जीवाष्म ईंधन (कोयला पेट्रोल आदि) के बढ़ते उपयोग से वातावरण प्रदूषित हुआ है और जलवायु में परिवर्तन आया है जिसके फलस्वरूप बाढ़, चक्रवाती तूफान तथा सूखे का प्रकोप बढ़ा है।[3] पर्यावरण को गहनतापूर्वक समझने के लिए हमें *परिस्थितिकी शब्द को भी विस्तार से समझना अति आवश्यक है। अत: इस आधार पर परिस्थितिकी शब्द* का अर्थ काफी गहरा और विस्तृत है। यह शब्द मुख्यत: परिस्थिति की ही व्याख्या करता है। जीवमंडल का प्रत्येक प्राणी कुछ निश्चित परिस्थितियों में ही सुखी रह सकता है और जब वह सुखी रहेगा तभी कुशलतापूर्वक उसकी वंश वृद्धि तथा पारस्परिक निर्भरता जैसी परिस्थितियां आपस में सामंजस्य बनाये रख सकती हैं।[4] पूर्वकाल

---

[1] http://elearning.sol.du.ac.in/dusol/mod/book/view.php?id=1448&chapterid=2157 as on 22 October 15

[2] डॉ मधु अस्थाना. (2012). पर्यावरण एक संक्षिप्त अध्ययन. पृ.26-27.

[3] वंदना शिवा. (2007). पानी के लिए युध्द. पृ.10.

[4] वंदना वोहरा. (2008). पर्यावरण अध्ययन. पृ.51.

में पर्यावरण से संबंधित यह शब्द परिस्थितिकी अधिक चर्चित नहीं था क्योंकि पर्यावरण भी विशेष चर्चा और महत्त्व का विषय नहीं माना जाता था, किंतु अन्य विकासों तथा विनाशों के साथ प्रत्येक विनाशिता का कारण खोजा जाने लगा। इस विनाशिता तथा तबाही के पीछे निश्चयात्मक तौर पर हमारी पारस्परिक निर्भरता के प्राकृतिक तत्त्वों में दोष उत्पन्न होना था और पर्यावरण का विस्तृत तथा आगे की जानकारी होने के बाद उसके दूषित होने की प्रकियाओं को भी खोजा जाने लगा है। क्योंकि इस प्रदूषण हस्तक्षेप के कारण मानवोपयोगी विभिन्न पहलुओं के चक्रण तथा स्वरूप में अव्यवस्था उपस्थित होने लगी थी।[1]

अत: विषयाध्ययन के लिए विज्ञान की जिस शाखा के तहत प्रदूषण की क्रियाओं का अध्ययन किया जाने लगा उसे वैज्ञानिकों ने *पारिस्थितिकी (Ecology)* का नाम दिया ।[2]

प्रारम्भ में इसका अध्ययन किसी अलग वैज्ञानिक पहलू से न करके अन्य विज्ञानों से जैसे- जीव विज्ञान, जंतु विज्ञान, भू-गर्भ विज्ञान आदि के अंतर्गत विभिन्न प्रकार से किया जाता था, किंतु हाल के वर्षों में पर्यावरण प्रदूषण और विकास अत्यधिक चर्चा का विषय हो गया और आम जनता में भी चर्चा के विषय के तौर पर अपनी पहचान बना रहा है। इसलिए इसके अध्ययन के लिए अलग शाखा का विकास हो रहा है। कहने का तात्पर्य यह कि जिस शाखा के अंतर्गत अब इसका अध्ययन किया जा रहा है उसे *जर्मन वैज्ञानिक हैकेल ने 1896 में पारिस्थितिकी विज्ञान का नाम दिया था। उसके इस नाम का विच्छेद था– Zoology=Oiks=house logas=discourse* और यह भी निश्चित किया कि इसके अंतर्गत प्राकृतिक परिस्थितियों के अतिरिक्त जीवों और वातावरण से उनके संबंधों का भी अध्ययन किया जाएगा।[3]

जिन पारिस्थितिकी सिद्धांतों को हम अपना सब कुछ खोकर अब समझ रहे हैं उसे हमारे पूर्वज पूर्वकाल में अपनी जीवनचर्या में महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार करते थे। हमारे प्राचीन ग्रथों में भी इसका वर्णन मिलता है। पारिस्थितिकी की महत्ता को समझते हुए और वृक्षों की उनकी महत्ता वाली भूमिका की सोच का पता हमें दार्शनिक प्लेटो की इस शिकायत से भी चल जाता है कि ग्रीस के पहाड़ों से पेड़ बराबर कटते जा रहे हैं। उनकी इस शिकायत से उनकी पर्यावरण की भावी चिंता का पता लग जाता है और यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय प्रकृति में पेड़ों (वनस्पति) का कितना महत्त्व था। इन बाढ़ जनित विध्वंसों के काफी पहले हिमालय पर आये खतरे के बारे में चेतावनी मिल चुकी थी।[4] 1952 में गांधी जी की शिष्या

[1] लता जोशी. (2001). पर्यावरण की राजनीति. पृ.26.
[2] वंदना वोहरा. (2008). पर्यावरण अध्ययन. पृ.51.
[3] वही.
[4] डॉ मधु अस्थाना. (2012). पर्यावरण एक संक्षिप्त अध्ययन. पृ.69.

मीरा बहन ने कहा था: *साल दर साल उत्तर भारत में बाढ़ की स्थिति बदतर होती जा रही है और इस साल पूरी तरह विध्वंसकारी हो गई है। इसका अर्थ यह कि हिमालय के साथ कुछ गंभीर गलती हो रही है और यह गलती निश्चय ही वनों से सम्बंधित है। कुछ लोग सोचते हैं कि यह केवल वन विनाश का मामला है, लेकिन मेरा मानना है कि प्रमुख रूप से यह जैव प्रजातियों के परिवर्तन का मामला है। मैं अनेक वर्षो से लगातार हिमालय में रह रही हूँ। इस दौरान पेड़ों की प्रजातियों में हुए जौविक परिवर्तनों को मैंने बड़ी वेदना से महसूस किया है। यह परिवर्तन उन ऊंचे दक्षिणी ढलावों पर भी होता है जो बाढ़ के पानी को नीचे के मैदानों में ले जाते हैं। बांज के वृक्षों की जगह पर चीड़-देवदार के वन लग रहे हैं जो घातक है। चूंकि यह वन में परिवर्तन का मामला है इसलिए इस पर यथेष्ट गंभीरता नहीं दिखाई जा रही है। दरअसल अर्ध-व्यापारिक वन विभाग इस परिघटना पर आखें मूंद कर बैठा है क्योंकि बांज के वृक्षों से तिजोरी में पैसा नहीं आता, जबकि चीड़-देवदार के वृक्ष बहुत मुनाफा देते हैं।*[1]

हिमालय के पहाड़ी जल सम्भरण क्षेत्रों में जल संरक्षण की प्राथमिक प्रणाली के रूप में बांज की पत्तियों की खाद के महत्त्व के बावजूद और बांज के वनों के विलुप्त होते जाने की चेतावनी के बावजूद औद्योगिक वनीकरण का क्रम चल रहा है जिससे इस क्षेत्र में व्यापक विध्वंस की परिस्थिति पैदा होती जा रही है।[2]

जीवमंडल के विभिन्न जीवधारियों, चाहे वह मानव, पशु-पक्षी, जलचर, थलचर कुछ भी हों, सब की जीवंतता की परिस्थितियां अलग-अलग है। जैसे कुछ प्राणी तथा वनस्पतियां जल में अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वहीं से वह अपने जीवन के लिए आवश्यक संसाधन जुटाते हैं। कुछ वायुमंडल में विचरण करते हैं। कुछ थल पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। अत: वे अपनी उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति उचित पर्यावरण चक्र से ही कर सकते हैं। इस पहलू के अंतर्गत पर्यावरण अत्यधिक प्रभावी है जिसमें कि जीवमंडल में विद्यमान चेतन जीव ही नहीं बल्कि प्रकृति में क्रियाशील अचेतन शक्तियां भी हैं। वैसे तो पारिस्थितिकी में जीवों के सभी वर्ग आ जाते हैं फिर भी इसमें महत्वपूर्ण केन्द्रीय भूमिका मानव ही निभाता है। प्रकृति में पूर्वावस्था में स्थापित सभी प्राकृतिक पद्धतियों से टक्कर लेने और छेड़खानी का मन सबसे पहले उसने ही बनाया और इसी क्रम में लंबा चलने के परिणाम के तौर पर प्राकृतिक (जल, जंगल और जमीन) परिस्थितियों और पद्धतियों में बदलाव आने के कारण आज जल, जंगल और जमीन एक दूसरे से जुड़े हैं। किसी के भी मामले में दखलंदाजी करने पर दूसरे वर्ग के दीर्घ प्रक्रियात्मक में भी काफी गहरा तथा

[1] वंदना शिवा. (2007). पानी के लिए युध्द. पृ.11-12.
[2] वही.

लंबा असर पड़ता है।[1] इस बारे में प्रोफेसर बेरी का कहना है कि 'ये आपसी संबंध विशेषकर खाद्य श्रृंखला पर्यावरण में हमारी जीवन यात्रा के प्रयासों को गति प्रदान करते हैं तथा उन्हें विस्तार देते हैं।' वे पारिस्थितिकी में हमारे द्वारा उत्पन्न होने वाली दशा को एक निम्न उदाहरण से समझाते हुए कहते हैं कि यदि हम प्रति ग्राम मृदा में कीटनाशक की एक इकाई डालें तो उसमें रहने वाले भू-कीट प्रति ग्राम दस से चालीस इकाई प्राप्त करें और इन कीटों को खाकर जीवित रहने वाले कठफोड़वे पक्षियों में तो कीटनाशक का स्तर बढ़कर दो सौ इकाई प्रति ग्राम हो जाएगा। इसी प्रकार प्रौद्योगिकी क्रांति के कारण जन्में अवांछित कचरे भी पारिस्थितिकी विनाश को बढ़ावा देते हैं।[2]

जल और आधुनिक विकास:-

जब हम जल और आधुनिक विकास की बात करते हैं तो उसमें जल, जंगल और जमीन को लेकर हमारे सामने प्रश्न उठता है कि आधुनिक विकास किसे कहते हैं? क्या *बाजारवाद* ने अपनी पकड़ इतनी मजबूत की है जिससे की पर्यावरण में असंतुलन की समस्या सिर उठाने लगी हैं? दुनिया भर में *ग्लोबल वार्मिंग पर चिंता व्यक्त* की जा रही है। क्योंकि हमारे लिए जीवन का संघर्ष और अस्तित्व दोनों ही सतत चलने वाली प्रक्रिया हैं। आधुनिक विकास के चलते कुछ चीजें साफ तौर पर जग जाहिर हो चुकी है। जल, जंगल और जमीन का क्षेत्रफल कम हुआ है। नदियों का जलस्तर घटा है। देश के विभिन्न हिस्सों में नदी बचाओं और भू-जल के लिये विवाद आरम्भ हो चुका है, वहीं दूसरी ओर नदियों की परियोजना पर भी विचार किया जा रहा है। इसके साथ ही औद्योगिक क्षेत्र में दिन दूनी रात चौगुनी दर से तरक्की हुई है। विकास के साथ इन सब बातों का बुरा असर जल, जंगल और जमीन पर दिख रहा है। जीवन की बदलती शैली में पर्यावरण असंतुलित हुआ है। पर्यावरण की समस्या को विभिन्न आयामों से देखा जा रहा है। [3]

जल और आधुनिक विकास की शुरुआत सोलहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी जोकि औद्योगिक क्षेत्र में अत्यधिक क्रांति के दशक माने जाते हैं, तब से ही जल, जंगल और जमीन की प्रदूषणात्मक प्रवृत्ति जन्म लेती रही किंतु उस समय इसका एक तरफा विनाश तथा कम उपयोग था इसलिए यह चर्चा और गौर करने के लिए समस्यात्मक पहलू के तौर पर नहीं लिया जाता था और उस समय तक प्रकृति भी इसके शुद्धीकरण के लिए काफी हद तक सक्षम थी। इसमें उत्पन्न प्रदूषण तथा नाशक जीव प्राकृतिक प्रक्रियाओं से स्वयं ही नष्ट हो जाते थे, किंतु धीरे-धीरे विकास की चरम सीमा तक पहुँचने और जनसंख्या बढ़ोत्तरी के साथ-साथ

[1] वंदना वोहरा. (2008). पर्यावरण अध्ययन. पृ.67-68.

[2] लता जोशी. (2001). पर्यावरण की राजनीति. पृ.29.

[3] http://www.charkha.org/newsletter/datadec8/hindifeature3dec08.html as on 22 June 2015

अत्याधिक प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के लालच के कारण प्रकृति का निशुल्क ऊर्जा स्रोत विनाशक रूप लेता जा रहा है।[1]

विश्व की 630 करोड़ जनसंख्या के लिए जल विभिन्न रूपों में उपयोग के इस नूतन परिदृश्य से स्पष्ट हुआ है कि *घरेलू उपयोग केवल 8 प्रतिशत हैं जबकि सर्वाधिक कृषि में 70 प्रतिशत तथा उद्योगों में 22 प्रतिशत जल का उपयोग होता है। यह आकलन हाल ही संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के विश्व जल विकास प्रतिवेदन 2003 में (World Water Development Report-2003) में प्रकाशित हुआ है।* साथ ही यह सम्भावना व्यक्त की गई है कि आने वाले समय में उद्योगों द्वारा इन दोनों क्षेत्रों के जल वितरण पर आक्रमण किया जाएगा। वर्तमान में यह प्रवृत्ति उद्योगों में बढ़ती माँग के रूप में भी दृष्टिगत हो रही है। वास्तव में उच्च आय वाले देशों में उद्योगों में जल का उपयोग हो रहे कृषि क्षेत्र का दुगना हैं। इस कारण लोग कृषि कार्य के स्थान पर उद्योग के चयन को प्राथमिकता दे रहे हैं तथा इसे आर्थिक विकास का प्रमुख सूचकांक मान लिया गया है।[2]

वर्तमान में उद्योगों में जल की बढ़ती मांग चिंता का विषय बन रही है। क्योंकि विकासशील देश विकसित औद्योगिक प्रधानता वाले देशों का अनुसरण कर रहे हैं। इस प्रकार आशंका जतायी जा रही है कि जल का वर्तमान उद्योगों में उपयोग (22 प्रतिशत) आगामी दो दशकों में दुगना हो जायेगा।

विश्व जल विकास प्रतिवेदन 2003(WWDR 2003) के अनुसार सन् 1995 में प्रतिवर्ष 752 किमी जल का उपभोग था जो बढ़कर सन् 2025 तक 1170 प्रतिवर्ष किमी हो जायेगा । इसमें सर्वाधिक वृद्धि औद्योगिक क्षेत्र में होगी जिसमें भारत जैसे विकासशील देशों में औद्योगिक माँग अधिक होगी जहाँ आज विकसित देशों की तुलना में कम है।[3]

---

[1] http://paryavaran-digest.blogspot.in/search? as on 12 June 2015

[2] राम कुमार गुर्जर एवं बी सी जाट. (2005). जल संसाधन भूगोल. पृ.195.

[3] वही.

सारणी 1

वर्तमान में विकसित देशों से उद्योगों का स्थानांतरण विकासशील देशों में हो रहा है यह प्रवृत्ति लम्बे समय से जारी है।

क्षेत्र	विश्व	निम्न एवं मध्यम आय वाले देश	उच्च आय वाले क्षेत्र (उपयोग प्रतिशत में)
कृषि	70	82	30
उद्योग	22	10	59
घरेलू	8	8	11

source: World Bank, 2001

उद्योगों में जल का उपयोग किसी भी देश की अर्थव्यवस्था से प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित होता है। इसलिए यदि भारत का सकल घरेलू उत्पादन बढ़ रहा है तो भारतीय उद्योगों में जल का उपयोग भी बढ़ रहा है। उद्योग न केवल जल का ही उपयोग करते है। इसे प्रदूषित कर इसकी गुणात्मक मात्रा में भी कमी लाते है। *WWDR 2003 के अनुसार, विकसित देशों में 70 प्रतिशत औद्योगिक व्यर्थ पदार्थ बिना उपचार के ही निस्तारित किये जाते हैं।* फलत: ये उद्योग उपयोग योग्य जलापूर्ति को प्रदूषित कर रहे हैं। इस *प्रकार उद्योगों में जल के उपयोग का मुद्दा दो संकटकालीन मुद्दों से अंत: संबंध है-प्रथम जल का उपयोग तथा दूसरा जल प्रदूषण हैं।*[1]

[1] राम कुमार गुर्जर एवं बी सी जाट. (2005). जल संसाधन भूगोल. पृ.196.

सारणी 2

भारत में औद्योगिक क्षेत्र में जल की बढ़ती माँग

(बिलियन क्यूबिक मीटर)

वर्ग	1990	2010	2025	2025
सिंचाई	460 (88.6%)	556 (77.3%)	688 (73%)	1008 ((70.9%)
घरेलू	25 (4.8%)	41.6 (6.1%)	52 (5.5%)	67 (4.7%)
उघोग एवं ऊर्जा	34 (6.6%)	40.1 (6%)	80 (8.5%)	121(8.5%) 143 (10.1%)
कुल(अन्य सहित)	519	693	942	1422

Source: National Commission for Integrated Water Resources Development Plan, Ministry of Water Resources – 1999.

जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता घटती जा रही है जहाँ सन् 1951 में प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक 5177 क्यूबिक मीटर जल की उपलब्धता थी। वहीं 2001 में घटकर 1869 क्यूबिक मीटर हो गई। आशा की जाती है कि यह उपलब्धता सन् 2025 तक घटकर प्रति व्यक्ति 1340 क्यूबिक मीटर प्रतिवर्ष हो जाएगी। ऐसी स्थिति में जल की भयंकर कमी आयेगी क्योंकि अनेक नदियों की 50 प्रतिशत क्षमता का दोहन तो पहले ही किया जा चुका है। सकल घरेलू जलापूर्ति का 80 प्रतिशत भूजल पर निर्भर करता है तथापि हम निरंतर भूजल को प्रदूषित कर रहे हैं। फलस्वरूप जल स्तर के निरंतर गिरने तथा प्रदूषण की समस्या ज्वलन्त होती जा रही है। [1]

भारत के केन्द्रीय जल संसाधन मंत्रालय के अनुसार देश में सर्वाधिक जल आपूर्ति कृषि में होती है जो कुल वार्षिक जल उपलब्धता का 80 प्रतिशत है जबकि घरेलू माँग कुल शुद्ध जल का 5 प्रतिशत ही है। इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र कृषि के बाद द्वितीय स्थान पर है।

[1] राम कुमार गुर्जर एवं बी सी जाट. (2005). जल संसाधन भूगोल. पृ.197.

भारत में औद्योगिक क्षेत्र में जल का उपयोग:-

भारतीय परिदृश्य के बारे में विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों द्वारा उद्योगों में जल के उपयोग के बारे में अनेक आकलन प्रस्तुत किये हैं। जल संसाधन मंत्रालय के अनुसार देश के औद्योगिक क्षेत्रों में लगभग 40 बिलियन क्यूबिक मीटर जल का उपयोग होता है जो कुल उपलब्धता का लगभग 6 प्रतिशत है। भारत के केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड (CPCB) के अनुसार देश में कुल वार्षिक शुद्ध जल लगभग 500 बिलियन क्यूबिक मीटर है। इसका लगभग 10 बिलियन क्यूबिक मीटर जल उद्योगों में प्रक्रियात्मक जल के रूप में आता है तथा 30 बिलियन क्यूबिक मीटर जल शीतलन में काम आता है। इस प्रकार उद्योगों में प्रयुक्त जल का यह हिस्सा देश के कुल उपलब्ध शुद्ध जल का लगभग 8 प्रतिशत है। दूसरी ओर विश्व बैंक के अनुसार औद्योगिक उपयोग तथा ऊर्जा उत्पादन के लिए जल की माँग प्रतिवर्ष 42 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। सन् *1999 में 67 बिलियन क्यूबिक मीटर से बढ़कर सन् 2025 में 228 बिलियन क्यूबिक मीटर हो जाएगी। इस* प्रकार उद्योगों में उपयोग में आ रहा जल वर्तमान उपलब्धता का लगभग 13 प्रतिशत है। विभिन्न आकलनों से स्पष्ट होता है कि उद्योगों में जल की मांग निरंतर बढ़ती जा रही है।[1]

उद्योगों में जल की बढ़ती मांग का प्रभाव वर्तमान जल संसाधन की संतुलित उपलब्धता पर दो तरह से पड़ता है– प्रथम इसकी बढ़ती मांग की सुव्यवस्थित आपूर्ति को बरकरार रखना तथा दूसरा जल की गुणवत्ता को प्राकृतिक रूप में बनाये रखना ताकि संतुलित उपलब्धता सभी क्षेत्रों में बनी रहे। लेकिन बढ़ते औद्योगिकरण के कारण ऐसी सम्भावना क्षीण प्रतीत हो रही है जबकि उद्योगों में प्रयुक्त जल दोहरी धार वाली तलवार सिद्ध होकर दोहरी माँग कर रही है।[2]

[1] राम कुमार गुर्जर एवं बी सी जाट. (2005). जल संसाधन भूगोल. पृ.197.
[2] वही.

सारणी 3

उद्योगों द्वारा प्रदूषित जल का भारतीय परिदृश्य

औद्योगिक	अपशिष्ट जल वार्षिक विसर्जन	वार्षिक जल का उपयोग (मिलियन क्यूबिक मीटर)	उद्योगों में जल के उपयोग अनुपात (प्रतिशत)
ताप विद्युत संयंत्र	27000.9	35157.4	87.87
अभियांत्रिक	1551.3	2019.9	5.05
कागज एवं लुग्दी	695.7	905.8	2.26
वस्त्र	637.3	829.8	2.07
इस्पात	396.8	516.6	1.29
चीनी	149.7	194.9	0.49
उर्वरक	56.4	73.5	0.18
अन्य	241.3	314.2	0.78
कुल	30729.2	40012.0	100.0

Source: Estimated by CES based on the water discharged, data published by CPCB in Water Quality in India 1990-2001. Down to Earth February 29. 2004[1]

उद्योगों में जल का उपभोग इस बात पर निर्भर करता है कि उद्योग किस प्रकार का है जहाँ ताप विद्युत, ताप संयंत्र, वस्त्र, कागज एवं लुग्दी तथा लौह एवं इस्पात उद्योगों में अत्यधिक जल की आवश्यकता होती है। देश के प्रमुख ताप विद्युत संयंत्र सरकारी नियंत्रण में हैं। औसतन 1000 किलोवाट शक्ति उत्पादन वाला ताप विद्युत संयंत्र 80 क्यूबिक मीटर जल का उपभोग करता है। भारत में विकसित देशों की तुलना में कागज एवं लुग्दी उद्योग में भी जल की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। वस्त्र उद्योग में भी जल की अतिरिक्त

[1] राम कुमार गुर्जर एवं बी सी जाट. (2005). जल संसाधन भूगोल. पृ.198.

मात्र का उपभोग हो रहा है। देश की अधिकांश वस्त्र मीलों में प्रति धारा के रूप में वस्त्र धुलाई वाले जल का उपयोग नहीं होता है जबकि यहाँ प्रतिधारा की जगह प्रयेक स्तर पर शुद्ध जल का ही उपयोग करते हैं।[1]

जल और नदी की संस्कृति:-

किसी समाज की विश्व-दृष्टि का लक्षण यह है कि वह अपने प्राकृतिक परिवेश को उसके विभिन्न अवयवों को किस रूप में देखता तथा समझता है। यदि समाज और संस्कृति का अर्थबोध और जीवन-व्यवहार है तो यह मानना होगा कि विश्व-दृष्टि के मूलतः बदल जाने का अर्थ है राष्ट्रीय संस्कृति का बदल जाना तथा उसका रूपांतरण। भारतीय समाज अपनी नदियों को किस रूप में देखता रहा है और अब कैसे देखता है इसका स्मरण इसी दृष्टि से सार्थक है।

सबसे पहले स्वयं बोध की ही बात लें तो दुनिया की अलग-अलग संस्कृतियों में बोध का स्रोत अलग-अलग माना गया है। *कहीं कोई देवदूत, पैगंबर, मसीहा,* कहीं ऐतिहासिक-शक्तियां, उत्पादन का ढांचा, औद्योगिक विकास की दशा विशेष इत्यादि। प्राचीन काल में भारतीयों की मान्यता यह भी थी कि संपूर्ण सृष्टि में एक ही अखंड सत्ता सर्वत्र है किंतु प्रत्येक प्राणी को इस अखंड बोध का अस्फुट आभास मात्र रहता है। क्योंकि सामान्यत: प्राणी अपनी ही लालसाओं और योजनाओं की तात्कालिक पूर्ति में व्यस्त रहते हैं। स्फुट यानी स्पष्ट बोध तो साधना से संभव होता है। यह साधना हर व्यक्ति कर सकता है। इस साधना के संकेत ही दिए जा संकते है वास्तविक बोध तो स्वत: पाना होता है। इसी संकेत के संदर्भ में यह कहा गया है कि *"बोध की प्राप्ति हमारे पूर्वजों को पर्वतों की घाटियों और नदियों के संगम पर हुई।"*[2]

इस तरह भारतीय विश्व-दृष्टि में नदियों के प्रति एक विशेष श्रद्धा-भाव है, वे पवित्र प्रवाह के रूप में देखी जाती रही हैं। विभिन्न काल-खंडों में इस पवित्र-भावदृष्टि की अगल-अलग तरह से अभिव्यक्त हुई है। वैदिक और प्राग्वैदिक काल में भाषा की मूल दृष्टि भी भिन्न थी।

जल मात्र को पवित्र माना गया है स्वाभाविक जल विशेषत:पवित्र है। स्वाभाविक जल का अर्थ है नदियां, मन्दिरों से जुड़ी वापियां, झीले, गहरे कुंड और पर्वतीय प्रपात ।[3]

अंतरराष्ट्रीय जल विवाद:-

जल सदियों से प्राकृतिक संसाधनों का स्रोत रहा है जल एक ऐसा प्राकृतिक संसाधन है जो किसी भी देश के लिये एक दूसरे का विवाद बना हुआ है। इसमें भारत और बांग्लादेश के बीच जल विवाद का प्रमुख कारण

[1] रामेश्वर मिश्र पंकज. (1994). नदियां और हम. पृ.01.
[2] वही. पृ.02.
[3] वही.

है दोनों पड़ोसी देश आपस में 54 नदियों को साझा करते हैं जिसमें से गंगा, ब्रहापुत्र, मेघना और तीस्ता प्रमुख नदियां हैं। दोनों देशों को एकजुट करने वाली बहुत-सी चीजें हैं। जैसे- साझा इतिहास और साझी विरासत, संस्कृति और भाषाई संबंध, संगीत का जुनून, साहित्य और कला भारत बांग्लादेश के साथ ब्रिटिशराज से आजादी के लिए संघर्ष के इतिहास को ही साझा नहीं करता बल्कि ये 1971 में बांग्लादेश मुक्ति संग्राम के दौरान मजबूत सहयोगी भी रहे।[1]

भारत और बांग्लादेश के बीच काफी कुछ तालमेल होने के बावजूद भी दोनों को कई चुनैतियों का सामना करना पड़ रहा है जिसमें से एक चुनौती जल बंटवारे को लेकर है। इन नदियों की उत्पत्ति हिमालय से होती है। भारत और बांग्लादेश से गुजरते हुए ये बंगाल की खाड़ी में जा कर गिरती है। नदी का ऊपरी हिस्सा होने के कारण भारत हमेशा से इन स्रोत्रों पर अपनी दावेदारी करता रहा है। भारत ने बांग्लादेश में बहकर जाने वाले जल की मात्रा को भी नियंत्रित किया है। नदी का निचला हिस्सा होने के कारण बांग्लादेश की अद्वितीय स्थलाकृति हैं। यहां नदियों के बहाव में मौसमी बदलाव आते रहते हैं जिसके कारण शुष्क मौसम में पानी की कमी होने का खतरा बढ़ जाता है। नतीजन बांग्लादेश नदी के बहाव के लिए भारत के द्वारा बनी बांध पर निर्भर है। इस परिदृश्य को देखते हुए कहा जा सकता है कि जल बंटवारा अक्सर दो पड़ोसियों के बीच तनाव का स्रोत्र रहा है[2]।

गंगा जल समझौता:-

गंगा नदी भारत और बांग्लादेश के माध्यम से बहते हुए 2.500 किलोमीटर की लंबी यात्रा तय करती है। गंगा की उत्पति गंगोत्री से होती है जो भारत में हिमालय पर्वत शृंखला के दक्षिणी ढाल पर स्थित है और दक्षिण-पूर्व दिशा में बांग्लादेश की ओर मुड़ जाती है। गंगा की मुख्यधारा दो भागों में विभाजित हो जाती है जहां से बांग्लादेश के हृदय ब्रह्मपुत्र में जाकर मिलती है। उसके बाद इन दोनों नदियों का संयुक्त प्रवाह दक्षिण की ओर बहता है और बंगाल की खाड़ी में गिरता है। ये भौगोलिक विशेषता भारत और बांग्लादेश को ऊपरी नदी तट और निचले नदी तट राज्यों के रूप में विभाजित करती है। 1950 के दशक में भारत के पश्चिम बंगाल में गंगा पर फरक्का बैराज बनाने के प्रस्ताव ने दोनों देशों को संभावित दावों पर बातचीत करने

[1] कृपाशंकर चौबे. (2009). *पानी रे पानी*. पृ. 33-35.

[2] http://www.jansatta.com/international/new-chapter-begins-between-india-bangladesh-after-pm-narendra-modi-2-days-visit-to-bangladesh/286 as on 04 August 2015

के लिए तैयार किया। बांग्लादेश की आजादी में फरक्का बैराज से जुड़े विवादों को सुलझाने के क्रम में एक अन्य आयाम मिला है।[1]

भारत और बांग्लादेश के जल बंटवारे ने एक नई राजनैतिक पहचान बना ली है। और बांग्लादेश के पहले राष्ट्रपति मुक्ति ने भारत की भूमिका की सराहना की और भारत के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने की अपनी चाहत को व्यक्त किया। नतीजन मैत्री सहयोग और शांति की संधि पर मार्च 1972 में हस्ताक्षर किया गया। इस संधि के अनुसार दोनों ने जल संसाधन, सिंचाई बाढ़ और चक्रवात नियंत्रण के लिए आम हितों की दिशा में काम करने के लिए एक संयुक्त नदी आयोग (जेआरसी) की स्थापना की।[2]

फरक्का बैराज 42 किलोमीटर लंबी एक फीडर नहर द्वारा गंगा की जल धारा को हुगली नदी की ओर मोड़ने के लिए 1974 में बनाया गया था। संयुक्त नदी आयोग (जेआरसी) ने संयुक्त रूप से उपलब्ध जल संसाधनों के अधिकतम उपयोग के लिए वृद्धि के सभी संभावित संसाधनों का पता लगाने और ख़राब मौसम में पानी के बंटवारे के लिए एक पारस्परिक रूप से स्वीकार्य खोजने की मांग की। 1974 में गहन वर्ता के बावजूद जे.आर.सी समझौते तक नहीं पहुंच सका। फरक्का बैराज अभियान 1975 में शुरू किया गया और तभी से गंगा के जल बंटवारे और नियंत्रित करने के लिए दोनों देशों के बीच विवाद का मुख्य स्रोत्र बन गया। कोलकाता में औद्योगिक और घरेलू इस्तेमाल और पश्चिम बंगाल के अन्य भागों में सिंचाई प्रयोजनों के लिए पानी की मांग में वृद्धि के साथ जल के बंटवारे को लेकर विवाद तेज हो गया था। फरक्का बैराज के निर्माण के पीछे का उद्देश्य कोलकाता बंदरगाह पर पानी की गहराई को बढ़ाने और गंगा नदी की भागीरथी-हुगली शाखा का सूखे के दौरान प्रवाह को बढ़ाना था। नवंबर 1977 में जल बंटवारे को लेकर दोनों देशों के बीच पांच साल का प्रस्ताव रखा गया। हालांकि बुनियादी मुद्दा अनसुलझा ही रहा जिसकी वजह से समझैता 1982 में खत्म हो गया।[3]

अंत में भारत के प्रधानमंत्री एच.डी.देवगौडा और उनकी बांग्लादेशी समकक्ष शेख हसीना ने 1996 में एक व्यापक द्विपक्षीय संधि पर हस्ताक्षर किया। इस संधि ने तीन साल के जल बंटवारे समझौते की स्थापना की जिसमें बांग्लादेश को पानी की आपूर्ति करने की गारंटी की बात कही गयी। इस वजह से बांग्लादेश को निचले नदी तट के रूप में मान्यता दी गई।

---

[1] **http://archive.india.gov.in/hindi/sectors/water_resources/index.php?id=6 as on 12 April 2015**

[2] कृपाशंकर चौबे. (2009). *पानी रे पानी*. पृ. 38-39.

[3] **http://archive.india.gov.in/hindi/sectors/water_resources/index.php?id=6 as on 12 April 2015**

1996 की संधि में जरूरी सुरक्षा उपाय निहित नहीं थे हालांकि वहां पर विभिन्न प्रावधान हैं जोकि सुरक्षा प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए 11 मार्च से 10 मई की अवधि में वैकल्पिक 10 दिनों के अनुभाग में 35,000 क्यूसेक पानी देने का दोनों ओर से प्रावधान है। संधि का एक महत्पूर्ण पहलू ये भी है कि जब जल का बहाव 50,000 क्यूसेक से नीचे चला जाएगा तो इस आपातकालीन स्थिति को समझते हुए दोनों देशों की सरकारें विचार-विमर्श के लिए तैयार होंगी। इस संधि के तहत एक विवाद निपटारे की व्यवस्था रखी गई ताकि बहाव पर संयुक्त निगरानी की व्यवस्था से तथ्यों पर असहमति की संभावनाओं को खत्म किया जा सके। कुछ ही महीने बाद संधि को अपने पहले परीक्षण से गुजरना पड़ा क्योंकि गंगा में पानी की वास्तविक उपलब्धता फरक्का बैराज पर उम्मीद से कम हो गई थी। दूसरा मुद्दा भारत में फरक्का बैराज में जारी पानी के बीच और संबंधित हार्डिंग पुल पर पहुंचने की विसंगति से संबंधित है। हार्डिंग पुल पर गंगा के चैनल बहुत बड़े हैं और 1.5 लाख क्यूसेक की क्षमता वाले हैं लेकिन गलत भाव के कारण तलछट वितरण और रेतीकरण इसके प्रवाह को मापने में मुश्किलें पैदा करता है। एक बहुत बड़ी समस्या गोराई हम्प्प की भी है। बांग्लादेश का कहना है कि भारत के फरक्का में गंगा के पानी के भाव को नियंत्रित करने से दक्षिण-पश्चिम खुचना क्षेत्र में बड़ी समस्याएं उत्पन्न हो गई है। यहां पर पानी में लवणता की मात्रा और साथ ही कृषि, मत्स्य पालन और सुंदरी क्षेत्र की प्रजातियों के संरक्षण में मुश्किलें पैदा हो रही हैं। इस क्षेत्र में पानी की मुश्किलें पैदा हो रही है क्योंकि गंगा सूखती जा रही है। ये सच है कि ऐसी स्थितियां हैं, लेकिन यह कहना गलत होगा कि यह फरक्का की वजह से है। पिछली एक शताब्दी से देखा जा रहा है कि गंगा धीरे-धीरे पूर्व और उत्तर की ओर खिसकती जा रही है।[1]

तीस्ता जल बंटवारा समझौता:-

भारत और बांग्लादेश के बीच संधि के बावजूद अभी गंगाजल बंटवारे की समस्या पूरी तरह नहीं सुलझ सकी थी कि इसी बीच तीस्ता के जल बंटवारे के लिए दोनों देशों की संयुक्त समिति भारत-बांग्लादेश संयुक्त नदी आयोग की बैठक हुई ।[2] तीस्ता बारहमासी नदी है जिसमें बर्फ और वर्षा दोनों की वजह से हमेशा जल रहता है *इसकी उत्पत्ति हिमालय में चोलमु (त्यो लहुम) झील से हुआ है जो कि सिकिक्म में हैं और समुंद्र के स्तर से 5500 मीटर की ऊँचाई से निकलती हैं और बंगाल की खाड़ी में विलय होने से पहले लगभग 315 किलोमीटर की दूरी तय करती है। इसमें से लगभग 130 किलोमीटर बांग्लादेश से होते हुए बहती है। तीस्ता*

[1] **http://archive.india.gov.in/hindi/sectors/water_resources/index.php?id=6 as on 12 April 2015**

[2] कृपाशंकर चौबे. (2009). *पानी रे पानी*. पृ.42.

का तेज अवरोहण इस नदी को दुनिया की सबसे तेजी से बहने वाली नदी बताता है। यह सिवोक तराई क्षेत्र में निस्तारण होने से पहले विद्युत उत्पन्न करने की विशाल क्षमता रखता है।

54 नदियों में से गंगा के बाद सबसे महत्वपूर्ण नदी तीस्ता ही है जिसे भारत और बांग्लादेश दोनों के लिए बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। बांग्लादेश के लिए कुछ ज्यादा ही। उत्तर-पश्चिम बांग्लादेश में देश के सबसे बड़े हिस्से में चावल की खेती होती है जो कि सिंचाई के लिए इस नदी पर निर्भर है। ये नदी भारत से निकलती है और निल्फमरी जिले से बांग्लादेश में प्रवेश करती है। कुरिग्राम में ब्रह्मपुत्र से विलय होने से पहले ये रंगपुर लालमोनिर्हत और गैबंध जिलों से होकर 45 किलोमीटर बहते हुए यहां पहुँचती है। सितंबर मार्च के सूखा मौसम में बांग्लादेश को तीस्ता के जल की कृषि संबंधित गतिविधियों के लिए अत्यंत आवश्यकता होती है। रंगपुर में 7,50,000 हेक्टेयर सिंचाई परियोजना तीस्ता पर निर्भर है इस क्षेत्र में चावल की खेती सबसे महत्वपूर्ण है और ये क्षेत्र हर साल शुष्क मौसम में तीव्र जल की कमी का सामना करता है। भारत के दो राज्यों, पश्चिम बंगाल और सिक्किम, सिंचाई और जल विद्युत उत्पादन के लिए तीस्ता नदी पर दो बैराज स्थिति हैं- एक भारत और दूसरा बांग्लादेश में सिंचाई की सुविधा के लिए पानी उपलब्ध कराने के लिए बनाए गए हैं।

भारत में गोजलदोबा पर बने तीस्ता नदी बैराज में नीचें की ओर जाने वाले जल के बहाव को नियंत्रित करता है। उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में सिंचाई क्षमता में वृद्धि के लिए बांग्लादेश के लालमोनिर्हत जिले में तीस्ता नदी पर दलाई बैराज का निर्माण किया गया हैं ताकि नहर के जरिए सिंचाई का पानी उपलब्ध कराया जा सके। दलाई बैराज शुष्क मौसम के दौरान अपर्याप्त जल प्रवाह के कारण गैर-कार्यात्मक हो जाता है। वहीं बारिश के मौसम में ये शुष्क मौसम के विपरीत कम हो जाता है। गोजलदोबा बैराज से अत्यधिक जल प्रवाह होने के कारण बाढ़ और नदी के तट-कटाव होने लगता है जिससे निचले इलाकों की फसलें नष्ट हो जाती हैं। बांग्लादेश काफी लंबे समय से तर्क देता आ रहा है कि भारत ने गोजलदोबा बैराज का निर्माण दलाई बैराज से ऊपरी तटीय इलाके में किया है जिसके चलते शुष्क मौसम में जल का प्रवाह काफी कम हो जाता है। यही नहीं मानसून के मौसम में जल प्रवाह तेज हो जाने से निचले क्षेत्रों में बाढ़ और कटाव की स्थिति पैदा हो जाती है। सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता खासतौर पर शुष्क मौसम देशों के बीच लंबे समय से तनाव का कारण बना हुआ है। बांग्लादेश नदी का 20 प्रतिशत खुद के इस्तेमाल के लिए चाहता है और बाकी के जल को दोनों देश के बीच गोजलदोबा बैराज से साझा करने के लिए तैयार है।

तीस्ता नदी को लेकर लंबे समय से भारत और बांग्लादेश के बीच विवाद का विषय बना रहा है। यह 1952 से ही विवादित मुद्दा है जब बांग्लादेश पाकिस्तान का हिस्सा था। इस विषय पर भारत और

बांग्लादेश के बीच गंभीर चर्चा तब हुई जब बांग्लादेश स्वतंत्र देश बन गया। 1980 के दौरान दोनों ने उन तरीकों का स्वागत किया जिसके द्वारा तीस्ता के जल को दोनों के बीच साझा किया जा सके। 1980 के मध्य के दौरान दोनों देश एक अस्थाई समझौते पर पहुंचे लेकिन उसके बाद कोई ठोस परिणाम नहीं प्राप्त हुए। जब शेख हसीना ने 10 जनवरी 2010 को अपनी भारत यात्रा के दौरान भारत के साथ तीस्ता जल बंटवारे के मुद्दे पर मसौदा समझौते का आदान-प्रदान किया जिसके बाद दो दिवसीय मंत्रीस्तरीय बैठक संयुक्त नदी आयोग का आयोजन किया गया। जब बांग्लादेश ने एक अंतरिम समझौते पर मसौदा प्रस्तुत किया तो भारत ने भी उस वक्त शुष्क मौसम के दौरान नदी के पानी के बंटवारे का मसौदा पेश किया। इस बैठक के बाद ये निर्णय निकलकर सामने आया कि साल के भीतर तीस्ता नदी के जल बंटवारे को लेकर एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जाएंगे। ये बांग्लादेश के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में कृषि उत्पादन के लिए समर्थन प्रदान करेगा। दोनों देशों के बीच जल की मात्रा के बंटवारे को लेकर एक सवाल अनुत्तरित रह गया है। [1]

मार्च 2010 के 37 वें संयुक्त नदी आयोग (जेआरसी) की बैठक के दौरान बांग्लादेश ने अंतरिम समझौते का प्रस्ताव रखा जबकि भारत तीस्ता जल के बंटवारे पर सिद्वातों के बयान की पेशकश की। वार्ता के अंत में पहली बार दोनों तरफ से तीस्सा नदी के जल बंटवारे पर मसौदे का आदान-प्रदान किया गया ।

भारत में जल राज्य का विषय है। भारत और बांग्लादेश की तीस्ता जल बंटवारे की वार्ता के दौरान दोनों राज्य पश्चिम बंगाल और सिक्कम भी शामिल थे। संभवतया इस मसौदे पर ममता बनर्जी द्वारा हस्ताक्षर किया गया होगा तो वह अब इस बात से पीछे नहीं हट सकतीं लेकिन फिर भी ममता ने 2012 में *प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के साथ बांग्लादेश का दौरा करने से इंकार कर दिया था।* उन्होंने दावा किया था कि इस मुद्दे पर उनकी राय नहीं मांगी गई थी। जबकि तीस्ता उनके राज्य से होकर बहती है। भारत और बांग्लादेश के बीच गंगा नदी संधि एक मिसाल है और वर्तमान में दोनों देशों की सरकारों के बीच व्यवहारिकता के चलते तीस्ता जल बंटवारे समझौते पर हस्ताक्षर किया गया। इस बर्ताव की वजह से दोनों के बीच गंगा संधि भी संभव हुई। इस वक्त ममता बनर्जी ने सह-संचालिता प्रदान की। इससे दोनों देशों को लाभ ही प्राप्त नहीं होगा बल्कि भारत और बांग्लादेश भूमि हस्तांरतरण, सीमा विवाद, समुद्री सीमा निपटान और पारगमन अधिकार जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे को हल करने में सक्षम हो जाऐगे।

[1] **http://archive.india.gov.in/hindi/sectors/water_resources/index.php?id=6 as on 12 April 2015**

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार और बांग्लादेश की उदार प्रधानमंत्री शेख हसीना मिलकर इस मुद्दे का समाधान निकाल सकते हैं। मोदी ने कहा था कि "बंगबंधु ने बांग्लादेश को स्थापित बनाया और उनकी बेटी शेख हसीना इसे बचाया"[1]

सिंधु जल विवाद संधि 1960:-

सिंधु जल संधि 1960 के अंतर्गत भारत और पाकिस्तान ने दोनों देशों में सिंधु नदी के लिए आयुक्त का एक-एक स्थायी पद सृजित किया है जो इस संधि से उभरने वाले सभी मामलों के लिए अपनी-अपनी सरकारों के प्रतिनिधि हैं और संधि के कार्यान्वयन में संचार के नियमित साधन की भूमिका निभाते हैं। दोनों आयुक्त मिलकर स्थायी सिंधु आयोग बनाते हैं जो समय-समय पर बैठकें करता है और भारत- पाकिस्तान में परियोजनाओं/कार्यो के निरीक्षण दौरे भी करता है। स्थायी सिंधु आयोग की 102 बैठक नई दिल्ली में खासतौर पर बगलिहार जलविद्युत परियोजना मसले पर पाकिस्तान द्वारा उठाए गए मुद्दों पर चर्चा के लिए की गई। आयोग की 103 बैठक भी नई दिल्ली में आयोजित की गई जिसमें बगलिहार और किशनगंगा जल विद्युत परियोजनाओं की प्रारंभिक रिपोर्ट दाखिल करने पर भी चर्चा हुई। सहयोग की भावना के तहत जांच दौरे आयोग द्वारा पाक अधिकृत कश्मीर की नीलम घाटी, भारत की बगलिहार परियोजना और पाकिस्तान के मेराला हेड्वर्क्स के किए गए। संद्भावना के तौर पर अग्रिम बाढ़ चेतावनी उपाय करने के 01-07-2009 से चिनाब, सतलुज, तावी और रावी नदियों के बाढ़ संबंधी आंकड़े पाकिस्तान को सम्प्रेषित किए जा रहे हैं ताकि पाकिस्तान समय रहते बाढ़ राहत के प्रयास कर सके।

राष्ट्रीय महत्त्व को देखते हुए वर्ष 2008 में प्रस्तावित बरसर जलविधुत परियोजना, जिप्सा जल विद्युत परियोजना, बहुद्देशीय और द्वितीय रावी-व्यास लिंक परियोजना को शाहपुर कंडी बांध परियोजना के साथ राष्ट्रीय परियोजनाओं की सूची में शामिल किया गया है ताकि संधि के अंतर्गत उपलब्ध जल संसाधन क्षमता का अधिक प्रभावी उपयोग किया जा सके। इन परियोजनाओं के लिए उपयुक्त स्थल की पहचान और विस्तृत परियोजना रिपोर्ट पर काम चल रहा है।

भारत व चीन जल विवाद :-

वर्ष 2002 में भारत सरकार ने बाढ़ के मौसम में चीन द्वारा भारत को यालूजांग्बू/ब्रहापुत्र नदी के बारे में जल वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध कराने के लिए चीन के साथ एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए। इसके प्रावधानों के अनुसार चीनी पक्ष तीन केन्द्रों-नुगेशा, यांग्कुन और नुक्सिया के संबंध में हर वर्ष पहली जून से

[1] http://archive.india.gov.in/hindi/sectors/water_resources/index.php?id=6 as on 12 April 2015

15 अक्तूबर तक जल वैज्ञानिक सूचनाएं उपलब्ध करा रहा है जिसका उपयोग केंद्रीय जल आयोग द्वारा बाढ़ पूर्व सूचना के लिए कर रहा है। इस समझौते की अवधि 2007 में समाप्त हो गई 4-7 जून 2008 के माननीय विदेश मंत्री के बीजिंग दौरे के पर मानसून के दौरान यालूजांग्बू/ब्रहापुत्र की जलस्थिति के बारे में भारत को चीनी पक्ष द्वारा सूचना उपलब्ध कराने के संबंध में एक समझौते पर हस्ताक्षर 5 जून को किए गए। इस समझौते की वैधता पांच वर्ष तक रहेगी । अप्रैल 2005 में चीनी शासन्प्रमुख की भारत यात्रा के दौरान एक अन्य समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये गए जिसमें बाढ़ के मौसम में सतलुज (लाग्क्विन जांग्बू) के संबंध में जल वैज्ञानिक सूचनाओं की आपूर्ति का प्रवधान है। चीनी पक्ष वर्ष 2007 के मानसून से सतलुज नदी (लाग्क्विन जांग्बू) पर साडा केंद्र से नदी से संबंधित जल विज्ञान उपलब्ध करा रहा है। [1]

चीन के राष्ट्रपति ने 20 से 23 नवंबर 2006 के दौरान भारत का राजकीय दौरा किया। इस दौरान बाढ़ के मौसम में जल वैज्ञानिक स्तरीय मशीनरी स्थापित करने का सहमति हुई। तदनुसार दोनों पक्षों ने संयुक्त विशेषज्ञ स्तरीय मशीनरी स्थापित की है। भारतीय पक्ष की ओर से विशेषज्ञ समूह का नेतृत्व जल संसाधन मंत्रालय के आयुक्त कर रहे हैं। चीनी पक्ष का नेतृत्व वहां के जल संसाधन मंत्रालय के अंतर्गत अंतरराष्ट्रीय आर्थिक एवं तकनीकी सहयोग व विनियम केंद्र के निदेशक कर रहे हैं। संयुक्त विशेषज्ञ स्तर की पहली बैठक 19-21 सितंबर, 2007 को बीजिंग में हुई। जिसमें दोनों के मध्य जलीय सूचनाओं के आदान-प्रदान में द्वीपक्षीय सहयोग पर चर्चा की गई। सीमा पारीय नदियों पर विशेषज्ञ स्तरीय दूसरी बैठक 10-12 अप्रैल 2008 को हुई। इस बैठक में विशेषज्ञ स्तरीय प्रणाली के कार्य के स्वरूप पर सहमति बनी और इस पर हस्ताक्षर किए गए। बैठक में निर्णय लिया कि इस प्रकार की बैठक हर वर्ष बारी-बारी से भारत और चीन में होगी। संयुक्त विशेषज्ञ स्तर की तीसरी बैठक बीजिंग में 21 से 25 अप्रैल के दौरान आयोजित की गई। इस बैठक से दोनों देशों के मध्य बाढ़ के मौसम में जल बहाव के आँकड़ों के सरल ढ़ंग से आदान-प्रदान की प्रकिया को समझने में आसानी हुई ।[2]

भारत व नेपाल जल विवाद:-

जल संसाधन विकास के क्षेत्र में सहयोग के लिए केंद्र सरकार विभिन्न स्तरों पर नेपाल की सरकार के साथ सतत् संपर्क में है। महाकाली नदी के समन्वित विकास पर एक समझौता दोनों देशों की सरकारों के बीच फरवरी 1996 में हस्ताक्षरित हुआ जो जून 1997 से प्रभावी हुआ (महाकाली नदी समझौता) भारत में

[1] http://archive.india.gov.in/hindi/sectors/water_resources/index.php?id=6 **as on 12 April 2015**

[2] वही.

शारदा नदीं पर पंचेश्वर बहुद्देशीय परियोजना इस समझौते का केंद्र बिंदु है। पंचेश्वर बहुद्देशीय परियोजना की संयुक्त विस्तृत परियोजना रिपोर्ट जांच पूरी कर ली गई है और लंबित मुद्दों को सुलझाने के बाद जिन पर नेपाल के साथ विस्तृत चर्चा चल रही है, परियोजना रिपोर्ट को अंतिम रूप दिया जाएगा परियोजना से बाढ़ नियंत्रण सहित विद्युत और सिंचाई के लाभ भी प्राप्त होंगे।[1]

पंचेश्वर बहुद्देशीय परियोजना को प्रारंभ करने तथा उसके विकास और कार्यान्वयन के लिए यथाशीघ्र पंचेश्वर विकास प्राधिकरण के गठन की बात पर आम सहमित जल संसाधन पर गठित भारत-नेपाल की संयुक्त समिति की तीसरी बैठक में लिया गया है। यह बैठक 29 सितंबर से 1 अक्तूबर 2008 तक काठमांडू में हुई है। इस समिति की अगली बैठक में दिए जाने की सहमति बनी हुई है। चौथी बैठक में पंचेश्वर विकास प्राधिकरण के प्रारूप के संबंध में चर्चा हुई। इस संबंध में और अधिक चर्चा कर उसे अंतिम रूप समिति की अगली बैठक में दिए जाने की सहमति बनी है। चौथी बैठक दिल्ली में 12-13 मार्च, 2009 को हुई।

सप्त कोसी उच्च बांध बहुद्देशीय परियोजना और सुन कोसी भंडारण सह अपवर्तन योजना की विस्तृत परियोजना रिपोर्ट तैयार करने, संयुक्त फील्ड जांचों और अध्ययनों को शुरू करने के लिए भी नेपाल के साथ एक संधि की गई है। इस कार्य के लिए अगस्त 2004 में नेपाल में एक संयुक्त परियोजना कार्यालय खोला गया। फील्ड जांच का कार्य प्रगति पर है। जांच के कार्य फरवरी 2007 तक पूरे कर लिए जाने थे लेकिन नेपाल के हालातों के चलते वस्तुस्थिति की जांच के काम में देरी हो गई। सुरक्षा कारणों से कोसी बांध निर्माण स्थल पर मई 2007 से निर्माण कार्य बंद है। संयुक्त समिति की तीसरी बैठक काठमांडू में आयोजित हुई। बैठक में नेपाली पक्ष ने समिति को आश्वसन् किया है कि जांच स्थलों पर अधिकारियों और दल के सदस्यों को पूरी सुरक्षा मुहैया करवाई जाएगी। तीसरी बैठक के बाद जेपीओ-एसकेएसकेआई का कार्यालय, फील्ड जांच तथा डीपीआर की तैयारी के लिए जून 2010 तक बढ़ा दिया गया है। दिल्ली में आयोजित संयुक्त समिति की चौथी बैठक में भारतीय पक्ष ने सभी निर्माण स्थलों पर सुरक्षा उपलब्ध करवाने की बात कही है ताकि जांच का काम फिर से चालू किया जा सके और कार्य जून 2010 तक पूरा किया जा सके। नेपाली दल ने सप्तकोसी परियोजना क्षेत्र में यथाशीघ्र कार्य प्रारंभ करवाने के लिए हर संभव कदम उठाने की बात कही है। तकनीकी समितियों की संख्या को तार्किक बनाने तथा एक प्रभावी संयुक्त व्यवस्था के निर्माण के लिए त्रिस्तरीय प्रणाली की व्यवस्था की गई है- जिसमें भारत और नेपाल के मंत्रियों का जल संसाधन पर संयुक्त मंत्रिस्तरीय आयोग; भारत और नेपाल के सचिवों की सचिव स्तरीय जल संसाधन

[1] राजेन्द्र भट्ट रेमी कुमारी एवं भुवनेश्वर. (2015). भारत 2015 वार्षिक संदर्भ-ग्रंथ. पृ.814.

संयुक्त समिति तथा संयुक्त स्टैडिंग तकनीकी समिति जिसमें गंगा बाढ़ नियंत्रण आयोग, पटना के अध्यक्ष के स्तर के सदस्य होंगे। संयुक्त समिति की चौथी बैठक में जल संसाधन पर मंत्रिस्तरीय समिति के संदर्भ की शर्तो को अंतिम रूप दिया जा चुका है।[1]

भारत व भूटान नदी विवाद:-

भारत और भूटान में बहने वाली नदियों पर जल-मौसम विज्ञान और बाढ़ पूर्व सूचना नेटवर्क की स्थापना के लिए 'समग्र स्कीम' नामक एक योजना संचालन में है। इस नेटवर्क में भूटान में स्थिति 35 जल-मौसम विज्ञान केंद्र शामिल है जिन्हें भारत के वित्त पोषण से भूटान सरकार द्वारा चलाया जा रहा है। इन केंद्रों से प्राप्त आंकड़े से भारत में केन्द्रीय जल आयोग द्वारा बाढ़ की पूर्व सूचना के लिए इस्तेमाल किए जाते है। दोनों देशों के सरकारी अधिकारियों वाला एक संयुक्त विशेषज्ञ दल इस योजना की प्रगति और अन्य आवश्यकताओं पर लगातार नजर रखता है। इस समूह की पहली बैठक भूटान में 1 से 5 नवंबर 2004 को हुई। संयुक्त विशेषज्ञ समूह ने चर्चाओं के कई दौर किए और कुल प्रभावित क्षेत्रों का दौरा भी किया जिसमें भूस्खलन प्रवण इलाके और डोलामाइट खनन क्षेत्र शामिल थे।[2] चर्चाओं के आधार पर समूह ने महसूस किया कि अधिक विस्तृत तकनीकी परीक्षा की आवश्यकता है और तदनुसार उत्तरी बंगाल बाढ़ नियंत्रण आयोग के सदस्य (पीआईडी) की अध्यक्षता में एक संयुक्त तकनीकी दल का गठन किया गया जिसने पहली बैठक अप्रैल 2005 में की। इस दल ने तलछट भार के कुछ स्रोतों और भूस्खलन की प्रकृति का अध्ययन किया और संभावित उपायों पर फैसला लेने के लिए अधिक अध्ययन किया और मानचित्रण का सुझाव दिया। संयुक्त तकनीकी दल की प्राथमिक रिपोर्ट (जनवरी 2006) जल संसाधन मंत्रालय में फरवरी 2006 के दौरान प्राप्त हुई। विशेष समूह की बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार पांच सदस्यीय भारतीय दल ने रायल भूटानी सरकार के अधिकारियों के साथ सातिचू झील का दौरा 18-23 दिसंबर 2006 के दौरान किया। इस दल का गठन सातिचू नदी के दाहिने तट पर हुए भारी भूस्खलन के बाद किया गया था। संयुक्त दौरे के दौरान यह बात देखी गई की झील में पानी का स्तर बहुत कम है इसके बहाव वाले इलाकों में बाढ़ का खतरा जिसमें भारतीय इलाके भी शामिल है, बहुत ही कम है। फिर भी इस बात की अनुशंसा की गई कि झील की लगातार निगरानी करने की जरूरत है ताकि भूस्खलन जिसके कारण जल बहाव का रास्ता अवरुद्ध हो सकता है या झील के जलस्तर की निगरानी की जा सके खासतौर पर मानसून के समय में एक विशेष- विशेषज्ञ समूह की दूसरी बैठक नई दिल्ली में 26-27 फरवरी को आयोजित हुई। बैठक के दौरान

[1] http://archive.india.gov.in/hindi/sectors/water_resources/index.php?id=6 **as on 12 April 2015**

[2] राजेन्द्र भट्ट रेमी कुमारी एवं भुवनेश्वर. (2015). भारत 2015 संदर्भ-ग्रंथ. पृ.813.

संयुक्त तकनीकी दल की प्राथमिक रिपोर्ट (जनवरी 2006) भूटान में त्सातिचू झील पर भारत-भूटान विशेषज्ञ दल के संयुक्त दौरे (दिसंबर 2006) की रिपोर्ट और माथनगुड़ी के निकट मानस नदी पर बुल्हेड्स के निर्माण के लिए भूटान सरकार की अनुमति पर चर्चा की गई।

भारत और भूटान के विशेषज्ञों के दल 2008 में भूस्खलन बांध स्थल का एक और संयुक्त दौरा करेगें। विदेश मंत्रालय ने 10-04-2008 के अपने पत्र के जरिए डिफ्लेक्टरों के निर्माण के लिए भूटान सरकार की स्वीकृति की जानकारी दी है। यह स्वीकृति असम सरकार के जल संसाधन सचिव को इस अनुरोध के साथ भेज दी है कि वह भूटान के जेमागंग जिले के पांनवांग ब्लाक के स्थानीय प्रशासन् से जल संशाधन मंत्रालय के पत्र दिनांक 22-04-2008 के अनुसार डिफ्लेक्टरों के निर्माण के लिए कहें।[1]

अंतर- राज्यीय नदी जल विवाद:-

अंतर-राज्यीय नदी जल विवाद (आई एस आर डब्ल्यू डी) अधिनियम 1956 में मूल रूप से अंतर-राज्यीय नदियों और नदी घाटियों के जल से संबंधित विवादों के अधिनिर्णय के लिए संसद द्वारा 1956 में लागू किया गया। सरकारिया आयोग की सिफारिसों को ध्यान में रखते हुए *इस अधिनियम में संशोधन किया गया और 6 अगस्त 2002 को यह लागू हुआ।*[2] *इन संशोधनों में निश्चित समय में अंतर-राज्यीय जल विवाद* न्यायाधिकरणों की स्थापना तथा न्यायाधिकरणों द्वारा तय समय-सीमा के अंदर निर्णय देना शामिल है। संशोधन के अनुसार किसी राज्य सरकार से अनुरोध प्राप्ति की तिथि से एक वर्ष के अंदर केंद्र सरकार को न्यायाधिकरण की स्थापना करनी होगी। *इसके अलावा न्यायाधिकरण का निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश अथवा निर्णय के समान होगा।*[3]

कावेरी जल विवाद:- भारत की नदियों में कावेरी का स्थान महत्वपूर्ण है जिसे पौराणिक साहित्य में *दक्षिण गंगा, कुर्गी अन्नपूर्णा, कर्नाटक की भागीरथी और तमिलनाडु की स्वर्ण सरिता (पोन्नई) कहकर महिमामंडित किया जाता रहा है। पश्चिमी घाट के पर्वतीय क्षेत्र में कुर्ग के इलाके में कावेरी का उद्गम है।* यहां से पूर्व दिशा की ओर कर्नाटक प्रदेश से प्रवाहित होती हुई यह तमिलनाडु में प्रवेश करती है। अपनी विशाल जलराशि से प्रवाह क्षेत्र को धनधान्य से पूर्ण करती हुई यह *नदी पूर्णयाट्टीनम के पास बंगाल की खाड़ी में विलीन हो जाती है।*[4]

---

[1] http://archive.india.gov.in/hindi/sectors/water_resources/index.php?id=6 as on 12 April 2015

[2] राजेन्द्र भट्ट रेमी कुमारी एवं भुवनेश्वर. (2015). भारत 2015 वार्षिक संदर्भ- ग्रंथ. पृ.811.

[3] राधाकान्त भारती .(2014). भारत की नदिया. पृ.165-167.

[4] वही.

दक्षिण की गंगा और जीवनदायिनी कावेरी का अनुपम सौंदर्य अब तमिलनाडु और कर्नाटक के बीच पैदा हुए जल विवाद से झुलस रहा है। यह जल विवाद और सत्ता की राजनीति का खेल है यह वर्तमान स्थिति की देन नहीं है बल्कि इसका *बीजवपन टीपू सुल्तान के राज्यकाल (सत्रहवीं सदी) में हो चुका था। तत्कालीन मैसूर राज्य (अब कर्नाटक) में जब भी बांध बनाकर कावेरी जल के उपयोग का प्रयत्न हुआ* चेन्नई की ओर से आपत्ति होती रही थी। चेन्नई प्रेसिडेंसी (अब तमिलनाडु) में कावेरी प्रवाह क्षेत्र के निवासियों ने सैदव मैसूर क्षेत्र का विरोध किया था। अंततोगत्वा 1816 में दोनों राज्यों में समझौता हुआ तथा मैसूर नरेश और सुप्रसिद्ध इंजीनियर विस्वेस्त्रैया के प्रयत्नों के फलस्वरूप कावेरी नदी पर कृष्णराज सागर नाम से पहले आधुनिक किस्म के विशाल बांध और जलाशय का निर्माण संभव हो सका था। लेकिन आज जब कर्नाटक और तमिलनाडु दोनों राज्यों में पानी की मांग बढ़ी है तब वहां के निवासी अपने-अपने दावे पेश कर कावेरी का अधिक पानी अपने राज्य के लिए मांग रहे हैं।

कावेरी जल विवाद का यह प्रसंग केवल जल विवाद का नहीं रहा बल्कि देश के विभिन्न राज्यों में परस्पर आपसी संबंधो की उलझनपूर्ण समस्याओं का प्रतीक बन गया है।

कावेरी जल विवाद समस्या का प्रतीक:-

भारत सरकार ने कावेरी नदी और उसके नदी घाटी जल के वितरण से सम्बद्ध विवाद के अधिनिर्णय के लिए जल विवाद अधिकरण का गठन 2 जून 1990 को किया। अधिकरण ने 25 जून 1990 को एक अंतरिम आदेश पारित किया जिसमें तमिलनाडु सरकार और पांडुचेरी सरकार को कुछ राहत दी गई। सर्वोच्च न्यायालय की राय लेने के बाद यह आदेश किया गया था कि परिस्थितियां बदल जाने अथवा किसी भी पक्ष को किसी वर्ष में अनुचित मुसीबत की स्थिति में ऐसे पक्ष के लिए यह खुला होगा कि वह उपयुक्त आदेश के लिए अधिकरण से अनुरोध करे।

जल संसाधन मंत्रालय ने केंद्रीय जल आयोग की सलाह से विलिगुंडलू स्थल पर प्रवाहों का आकलन व समाधान करने तथा तमिलनाडु के मेटुर जलाशय में अंतर्वाहों को देखते हुए 21 जनवरी 1994 को एक विशेषज्ञ समिति गठित की जिसके अध्यक्ष मुख्य इंजीनियर (एस.आर.ओ) केंद्रीय जल आयोग कोयंबटूर हैं और थाला राज्यों में मुख्य इंजीनियर इसके सदस्य हैं। समिति ने मेटूर जलाशय एवं विलिगुंडलू स्थल के दौरे के अलावा जलप्रवाहों के आकलन एवं मिलान सहित थाला राज्यों के आंकड़ों का आदान-प्रदान किया।

कावेरी जल विवाद अधिकरण नियमित सुनवाई करता है और मार्च 1993 तक तमिलनाडु, केरल, संघ राज्य क्षेत्र पुडुचेरी एवं कर्नाटक सरकारों ने अपने मामले प्रस्तुत किए तथा उन्हें निपटाया तत्पश्चात विविध सिविल प्रकीर्ण याचिकाओं को निपटाया गया। अधिकरण के समक्ष राज्यों द्वारा आंकड़े भरने के प्रपत्र को अंतिम रूप दिया गया तथा गवाहों के हलफनामे दर्ज किए गए। किंतु 1995 के अंत में मानसूनी वर्षा की कमी के कारण कावेरी जल को लेकर कर्नाटक तथा तमिलनाडु के बीच विवाद ने उग्र रूपधारण कर लिया और मामला उच्चतम न्यायालय तथा प्रधानमंत्री तक पहुंच गया जिसका समाधान अंतरिम निर्णय से हुआ लेकिन विवाद का पूर्ण समाधान अभी नहीं हो पाया है। वर्ष 2008 के बाद दोनों राज्यों के बीच विमर्श के पश्चात स्थिति नियन्त्रण में है। कावेरी जल विवाद अधिकरण ने निचले कोलरून एनीकट डेल्टा पर 740 टीएमसी कावेरी जल के 50 प्रतिशत जल उत्पादन होने का अनुमान लगाया गया है तथा इसका बेसिन राज्यों में बंटवारा निम्नानुसार किया गया है-

तमिलनाडु	**419 टीएमसी**
कर्नाटक	270 टीएमसी
केरल	30 टीएमसी
पांडुचेरी केंद्र शासित क्षेत्र	7 टीएमसी
पर्यावरण सुरक्षा	10 टीएमसी
समुद्र में जल का अनिवार्य प्रवाह	4 टीएमसी[1]

कावेरी जल विवाद अधिकरण के अंतिम निर्णय को भारत सरकार द्वारा अधिसूचित नहीं किया गया है क्योंकि सहभागी राज्यों द्वारा उच्चतम न्यायलय में अलग-अलग विशेष अनुमित हेतु याचिकाएं दायर करने के अलावा अंतरराज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम 1956 की धारा 5(3) के तहत अधिकरण से स्पष्टीकरण मांगा गया है *किंतु अब तक कोई फैसला नहीं हो सका है मामला उच्चतम न्यायालय में विचाराधीन है। 2012 के मानसून में कम वर्षा होने से तमिलनाडु सरकार ने न्यायालय से गुहार लगाई तो*

[1] राधाकान्त भारती. (2014). भारत की नदियां. पृ.167-168.

न्यायालय के आदेश पर प्रधानमंत्री ने कर्नाटक के कृष्णराज सागर से सिंचाई के लिये जल छोड़ने का अनुदेश दिया।[1]

यमुना जल विवाद:-

यमुना के सतही प्रवाह के आवंटन के संबंध में उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, हिनमाचल प्रदेश और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के बीच समझौता ज्ञापन पर इन राज्यों के मुख्यमंत्रियो द्वारा केंद्रीय जल संसाधन एवं संसदीय कार्यमंत्री की उपस्थिति में *12 मई 1994 को हस्ताक्षर किए गए।* ये राज्य ओखला तक यमुना नदी में जल की औसत वार्षिक उपलब्धता के आधार पर हरियाणा को 5.730 मिलियन घन मीटर, उत्तर प्रदेश को 4.032 मिलियन घन मीटर राजस्थान को 1.116 मिलियन घन मीटर, हिमाचल प्रदेश को 0.374 मिलियन घन मीटर और दिल्ली को 0.724 मिलियन घन मीटर जल का आवंटन करने पर सहमत हुए। इस करार की समीक्षा सन् 2025 में की जा सकती है यदि इन चार राज्यों में से कोई ऐसी मांग करता है।[2]

यमुना जल करार:-

यमुना थाले के *राज्यों हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और दिल्ली के मुख्यमंत्रियों द्वारा एक समझौता-ज्ञापन पर 12 मई 1994 को हस्ताक्षर किय गए।* इसके जरिए ओखला तक के यमुना के उपजें सतही प्रवाहों को सह-थाला राज्यों के बीच आबंटित किया गया है। उपरी यमुना नदी बोर्ड के गठन और *हथिनीकुंड बैराज, रेणुका बांध एवं किशाऊ बांध परियोजनाओं के निर्माण के लिए इन* पांच थाला राज्यों के बीच करारों के प्रारूपों पर उस वर्ष के दौरान आयोजित की गई अंतरराज्यीय बैठक में विचार-विमर्श किया गया।[3]

रावी और व्यास जल-अधिकरण:-

रावी व्यास न्यायाधिरण का गठन 2 अप्रैल 1986 को हुआ था। इसने 30 जनवरी 1987 को अपनी रिपोर्ट दी। मई 1987 में इस रिपोर्ट को जारी किया गया। अगस्त 1987 में न्यायाधिकरण के लिए केंद्र सरकार तथा पंजाब एवं राजस्थान की सरकारों द्वारा रिपोर्ट के कुछ बिन्दुओं पर व्याख्या/मार्गदर्शन के लिए संदर्भ मंगवाया गया। भारत की तीन बड़ी नदी प्रणालीयां- गंगा, ब्रहापुत्र और सिन्धु अंतरराष्ट्रीय सीमाओं को पार करती है। यह मंत्रालय इन नदियों से संबंधित मुद्दों, नदी के जल संसाधन विकास परियोजनाओं तथा जल-

[1] राधाकान्त भारती. (2014). भारत की नदियां. पृ.168.

[2] वही.

[3] वहीं.

संबंधी अंतरराष्ट्रीय संधियों के संचालन के लिए पड़ोसी देशों के साथ विचार-विमर्श के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय सहयोग बढ़ाने के लिए उत्तरदायी है।[1]

रावी और जल अधिकरण ने अपनी रिपोर्ट जनवरी 1987 में भेजी। अगस्त 1987 में इस अधिकरण के पास एक और संदर्भ भेजा गया जिसमें केंद्र सरकार का एक संदर्भ तथा पंजाब, हरियाणा एवं राजस्थान की सरकारों से प्राप्त संदर्भ जिसमें इस रिपोर्ट के कुछ बिंदुओं पर स्पष्टीकरण/मार्गदर्शन मांगा गया था, शामिल थे। अधिकरण ने अप्रैल और अक्तूबर 2004 में सुनवाई की अधिकरण का कार्यकाल 2005 तक बढ़ाया गया अधिकरण की अंतिम रिपोर्ट मान्य नहीं होने से अब राष्ट्रपति के संदर्भ में मामला सर्वोच्च न्यायालय में लंबित है ।[2]

सोन जल-विवाद:-

सोन नदी के बेसिन राज्यों के मुख्यमंत्रियों तथा केंद्रीय जल संसाधन मंत्री द्वारा 24 अगस्त 1992 को बुलाई गई अंतरराज्यीय बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसरण में इस विवाद को सुलझाने के लिए दिशा-निर्देश तैयार करने हेतु दो तकनीकी समितियां, एक अध्यक्ष, केंद्रीय जल आयोग की अध्यक्षता में और दूसरी सदस्य (डबल्यू.पी.एंड.पी) केंद्रीय जल आयोग की अध्यक्षता में गठित की गई है। सोन थाले की जल उपलब्धता, सह-थाला राज्यों को इसका आवंटन तथा जल का उपयुक्त वितरण सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक प्रशासनिक व्यवस्थाओं पर सिफारिशों को अंतिम रूप देने के लिए अध्यक्ष, केंद्रीय जल आयोग की अध्यक्षता वाली *उच्च स्तरीय तकनीकी समिति की उत्तर प्रदेश, बिहार एवं मध्य प्रदेश राज्यों के बीच तीन बैठकें हुई। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट को अंतिम रूप दिया तथा 1993 में जल संसाधन मंत्रालय को प्रस्तुत किया।*[3]

किंतु इस पर सोन नदी आयोग की स्वीकृति के बावजूद बिहार सरकार ने सहमित नहीं दी। उसके अनुसार बाणसागर करार 1993 में उल्लिखित 14.25 मि.ए.फु. की प्रवाह-क्षमता के आंकड़े को बदलना नहीं चाहिए। इसी बीच राज्य पुनर्गठन अधिनियम 2000 के अंतर्गत मध्य प्रदेश तथा बिहार को काटकर दो नए राज्य क्रमशः छत्तीसगढ़ और झारखंड बनाए गए जिन्हें मध्य प्रदेश, बिहार और उत्तर प्रदेश के साथ सोन नदी के थाला राज्यों में शामिल कर लिया गया। इन पांच राज्यों के प्रतिनिधियों की बैठक जल आयोग के अध्यक्ष की अध्यक्षता में 2.7.2001 को नदी जल बंटवारे के लिए हुई जिसमें बिहार के प्रतिनिधि ने सोन

[1] राधाकान्त भारती. (2014). भारत की नदियां. पृ.168.

[2] वही.

[3] वही. पृ.169.

द्रोणी में जल प्रवाह राशि के बदलने पर अपनी असहमति जताई। प्रस्तावित गंगा और सोन प्रबंधन बोर्ड, अंतरराज्यीय नदी जल बोर्ड के गठन के मुद्दों पर बाद में बिहार के साथ झारखंड तथा छत्तीसगढ़ के साथ मध्य प्रदेश द्वारा विचार-विमर्श कर निर्णय लिया जा चुका है।[1]

[1]राधाकान्त भारती. (2014). भारत की नदियां. पृ.169.